संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-12, अंक-1 | **जनवरी-मार्च 2025** | **आईएसएसएन : 2348-5639**

संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

उप-संपादक
• डॉ. सुमन रानी

कार्यकारी संपादक
• डॉ. वर्षा रानी

सह-संपादक
• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रबंध संपादक
• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल

• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. ऊषा रानी, शिमला
• डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
• डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
• डॉ. संजय कुमार, रांची
• डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor,
  Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi,
  Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)-305815
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड-826001
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ.,
  आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**

शोधार्थी – जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
  रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
  चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड–247664
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप–प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
  त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writersm

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय : '2025 में नई दिशा की ओर'

प्रिय पाठकों,

नव वर्ष 2025 की शुरुआत में, हम सभी एक नए उत्साह और उद्देश्य के साथ आगे बढ़ने का संकल्प लेते हैं। यह समय है आत्ममूल्यांकन और भविष्य के लक्ष्यों को निर्धारित करने का। इस अंक के माध्यम से, हम आपको हमारे समर्पण और प्रतिबद्धता का एक और उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो पिछले वर्ष में हमारे प्रयासों और भविष्य की योजनाओं की दिशा तय करता है।

शोध और समालोचन के क्षेत्र में, वर्ष 2025 में हमारे प्रयासों का उद्देश्य न केवल उच्च गुणवत्ता वाले शोध कार्यों को प्रकाशित करना है, बल्कि उन विचारों और दृष्टिकोणों को भी सामने लाना है जो समाज के समग्र विकास में सहायक हो सकते हैं। हम इस वर्ष विशेष रूप से बहुपक्षीय और अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से शोध को बढ़ावा देना चाहते हैं। हमारे जर्नल में आने वाले लेखों की विषयवस्तु में गहरी विचारधारा और सामाजिक, वैज्ञानिक, और साहित्यिक क्षेत्र में नवाचार की छाप दिखाई देगी।

2025 में, हम उन विषयों पर विशेष ध्यान केंद्रित करेंगे जो आज के समय की सबसे बड़ी समस्याओं से जुड़ी हुई हैं। जलवायु परिवर्तन, डिजिटल शिक्षा, स्वास्थ्य और विज्ञान, और सामाजिक न्याय जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर अनुसंधान को प्रोत्साहित करना हमारा मुख्य लक्ष्य रहेगा। इसके साथ ही, हमारे शोध कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना, और अनुसंधान में लैंगिक समानता के सिद्धांतों को समाविष्ट करना भी हमारी प्राथमिकताओं में रहेगा।

हमारे लेखकों, शोधकर्ताओं और पाठकों के बीच संवाद को और भी प्रभावी बनाने के लिए हम डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिकतम उपयोग करेंगे। यह हमे उन शोधार्थियों तक पहुँचने में मदद करेगा, जो भौतिक सीमाओं से परे कार्य कर रहे हैं और जिनके पास अनुसंधान के नए दृष्टिकोण हैं। हम अपनी जर्नल की पहुँच को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित करने का प्रयास करेंगे, ताकि हम विविध संस्कृतियों और विचारों का आदान-प्रदान कर सकें।

इसके अलावा, हम नए शोधकर्ताओं को मंच देने के लिए एक विशेष अनुभाग भी शुरू करेंगे, जहाँ वे अपनी शोध कृतियाँ प्रकाशित कर सकेंगे। यह मंच युवा और नवोदित शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगा और उनकी कार्यों को समाज और शोध जगत में पहचान दिलाएगा।

वर्ष 2025 के इस महत्वपूर्ण चरण में, हम इस बात पर ध्यान देंगे कि हमारे द्वारा किए गए कार्यों और प्रकाशित लेखों का वास्तविक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़े। हम चाहते हैं कि हमारे जर्नल में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक कड़ी और विचार समाज में बदलाव और सकारात्मक क्रांति का कारण बने।

आइए, हम सभी मिलकर इस वर्ष को एक नए शोध और समालोचनात्मक दृष्टिकोण से भरपूर बनाएं और वैज्ञानिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से न केवल ज्ञान का आदान-प्रदान करें, बल्कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में भी कदम बढ़ाएं।

'शोध समालोचन' के जनवरी-मार्च 2025 के हमारे इस अंक में, हमने समकालीन शोध, सामाजिक मुद्दों, और सांस्कृतिक विमर्श पर केंद्रित लेख प्रस्तुत किए हैं। इस अंक में शामिल प्रमुख विषयों पर एक संक्षिप्त दृष्टि—

1. समकालीन शोध की दिशा

वर्तमान में, शोध की दिशा तेजी से बदल रही है। नई तकनीकों और विधियों के साथ, शोधकर्ता अपने क्षेत्रों में नवीनतम ज्ञान की खोज में जुटे हैं। इस खंड में, हम विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण शोध कार्यों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

2. सामाजिक मुद्दों पर विमर्श

समाज में व्याप्त असमानताएँ, पर्यावरणीय संकट, और मानवाधिकार जैसे मुद्दे आज भी प्रासंगिक हैं। इस खंड में, हमने इन विषयों पर विशेषज्ञों के विचार और समाधान प्रस्तुत किए हैं।

3. सांस्कृतिक विमर्श

हमारी सांस्कृतिक धरोहर और उसकी वर्तमान स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। इस खंड में, हमने विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं, उनकी चुनौतियों, और संरक्षण के उपायों पर लेख प्रस्तुत किए हैं।

4. विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रही है। इस खंड में, हमने नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी नवाचार, और उनके सामाजिक प्रभावों पर चर्चा की है।

हम आशा करते हैं कि यह अंक आपके ज्ञानवर्धन में सहायक होगा और समकालीन मुद्दों पर आपकी समझ को विस्तृत करेगा। आपके सुझाव और प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए मूल्यवान हैं। कृपया हमें अपनी राय से अवगत कराएं।

हम आपके सुझावों और विचारों का स्वागत करते हैं और विश्वास करते हैं कि 2025 में हम सभी मिलकर इस जर्नल को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाएंगे।

- नरेश कुमार सिहाग
संपादक
शोध समालोचन

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय : '2025 में नई दिशा की ओर' 6

भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका : एक समालोचनात्मक अध्ययन
आर्या सिंह 10

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के बाल साहित्य का अनुशीलन
डॉ. रचना शर्मा 15

'कामायनी' के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद का सौन्दर्य-बोध
डॉ. श्वेता दीप्ति 19

बाल साहित्य और प्रकृति का संबंध : विशेष संदर्भ 'पशु-पक्षी हमारे मित्र'
कार्तिक मोहन डोगरा 26

डॉ. नरेश सिहाग की पुस्तक 'सिंहल द्वीप की राजकुमारी' शिक्षा और मनोरंजन का अनूठा संगम 29
डॉ. महावीर प्रसाद पूनियां

Socio-economic Status Of Aganwadi Workers And Icds With Special Reference To Chaukhutiya Block (Almora District)
Dr. Reenu Rani Mishra and Mukesh Verma 32

Gender Bias in Haryana: Policies and Grassroots Realities
Santosh Kumar 40

हिन्दी काव्य में रामकथा
डॉ. अंजना शर्मा 46

प्रेमचंद के उपन्यासों में जनभाषा
डॉ. अजय कुमार 50

डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित सिंहलद्वीप की राजकुमारी लघुकथा संग्रह में मानवीय सरोकार
डॉ. राजपाल 54

डॉ. नरेश सिहाग के 'पशु पक्षी हमारे मित्र' काव्य संग्रह: बाल काव्य में एक गहन अध्ययन 56
डॉ. मीरा चौरसिया

डॉ. राजपाल की रचना संसृति
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट 60

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक एवं एकांकी : भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव
मोनिका 63

प्राचीन भारत में जाति व्यवस्था, पारिवारिक जीवन और मूल्यों का अध्ययन
राहुल सोनी 66

शासन और धर्म : प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों की समकालीन उपादेयता
प्रभात कुमार ओझा 70

बोहल की कविताएँ : एक अवलोकन
डॉ. सरला जांगिड़ 75
लोक की अवधारणा और लोकसाहित्य
डॉ. आर. के. वर्मा 77
उच्च शिक्षा के शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव : एक अध्ययन
वीर पाल / डॉ. सुरेंद्र प्रताप 82
The Explain Great Philosopher In India The Educational Philosophy Of Swami Vivekanand, Gurudev Rabindra Nath Taigore And Dr. Sarwpalli Radhakrushnan
Santosh Kumar Singh 90
नगरीकरण के प्रसार से उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याएँ (हनुमानगढ जिले के विशेष सन्दर्भ में) 98
कल्पना
भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में राजनैतिक परिवेश
Dr. Jinu John 102
विद्यापति के काव्य में प्रकृति-चित्रण
नयन कुमारी
डॉ. विनोद कुमार शर्मा 105
तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में परंपरा और आधुनिकता
जवाहर रंजन पंडा 111
डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित 'सिंहलद्वीप की राजकुमारी' लघुकथा संग्रह में सामाजिक सरोकार
डॉ. सुनीता देवी 115
न्यायिक सक्रियता : भारतीय लोकतंत्र में भूमिका, विकास, प्रभाव और सीमाएँ
हरकेश मीणा 117

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका : एक समालोचनात्मक अध्ययन

आर्या सिंह
शोध छात्रा (विधि विभाग)
चौधरी महादेव प्रसाद डिग्री कॉलेज, प्रयागराज
E-Mail : aryasingh.du@gmail.com
Mob. No. +91-9628553784

सारांश

विगत कुछ दशकों में पर्यावरणीय विधि के अभ्युदय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता की पृष्ठभूमि में न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण को सुनिश्चित करना प्रारंभ किया है। इसके लिए न्यायपालिका ने प्रगतिशील निर्वाचन का सहारा लिया है। जो उसकी सृजनात्मकता का घोतक है। इससे भी आगे बढ़कर न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता के द्वारा प्रशासनिक शून्यता को भरकर कार्यपालिका और विधायिका को सक्रिय बनाने का कार्य किया है। माननीय न्यायालय की इस सक्रियता ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए नए और महत्वपूर्ण सिद्धांतों के विकास में न्यायपालिका की मदद की है। इसमें पीढ़ियों में समानता का सिद्धांत, पूर्व सावधानी का सिद्धांत, पोषणीय विकास का सिद्धांत, प्रदूषक भुगतान करे का सिद्धांत, लोकन्यास का सिद्धांत, पूर्ण दायित्व का सिद्धांत इत्यादि महत्वपूर्ण है। न्यायपालिका द्वारा विकसित इन सिद्धांतों ने भारतीय पर्यावरणीय न्यायशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पर्यावरणीय मामलों में विशिष्ट विशेषज्ञता वाली अदालतों के तौर पर राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों (एम.सी मेहता बनाम कमलनाथ, 1986), इंडियन कौंसिल फॉर इनवायरो- लीगल एक्शन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1996), आंध्र प्रदेश पॉल्यूशन कंट्रोल बोर्ड बनाम एम वी नायडू (1999 और 2001) एवं भारत के विधि आयोग के 186 वाँ रिपोर्ट 2003 (संवैधानिक पर्यावरण न्यायालयों का प्रस्ताव) के सिफारिशों पर की गई है। विगत वर्षों में राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वनों की कटाई से लेकर अपशिष्ट प्रबंधन आदि के लिये सख्त नियमादेश पारित किये हैं।

प्रस्तावना

भारतीय परिदृश्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत प्रारंभिक कुछ दशकों में पर्यावरण संरक्षण कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं था। गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और राजनितिक, सामरिक उथल-पुथल के उस दौर में हमारी प्राथमिकता उद्योगों को स्थापित करना, नागरिकों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना, खाद्यान्न उत्पादन इत्यादि ही रहे, लेकिन भोपाल गैस त्रासदी के बाद पर्यावरण संरक्षण चिंता का विषय बन गया। इस घटना के बाद देश में जहां पर्यावरण विनियमन की मांग की जाने लगी वहीं

पर्यावरण संरक्षण को लेकर न्यायिक गतिविधियां भी बढ़ गई। 1986 का पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, पर्यावरण संरक्षण हेतु पहली सारभूत विधि थी। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य मानव पर्यावरण पर अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों को लागू करना और तेजी से हो रहे औद्योगिकरण और शहरीकरण से पर्यावरण की रक्षा करना था। भारतीय संसद द्वारा 42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा पर्यावरण संरक्षण को राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में शामिल करते हुए संवैधानिक दर्जा दिया गया। इन प्रावधानों को माननीय न्यायपालिका द्वारा संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के रूप में मान्यता देते हुए व्यापक रूप से विकसित और मजबूत किया गया है। न्यायपालिका यह सुनिश्चित करने में की वर्तमान पीढ़ी भविष्य की पीढ़ियों को बगैर नुकसान पहुंचाए गुणवत्ता पूर्ण जीवन का आनंद लेती रहे, हेतु प्रयास करती रही है। आज उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयो ने जनहित याचिकाओ के माध्यम से पहले से वंचित रहे समाज के बड़े हिस्से तक कानून के पहुंच को बढ़ा दिया है। जनहित याचिकाएं न्यायाधीशों द्वारा निर्मित अदालती प्रक्रियाओं और प्रास्थिति के नियम के उदारीकरण पर आधारित, एक जन-उन्मुख दृष्टिकोण है। जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायपालिका ने संवैधानिक प्रावधानों यथा अनुच्छेद 21, 48 (क), 51 (क) (छ) का स्वर्णिम निर्वचन कर भारत में पर्यावरणीय न्याय को बढ़ावा दिया है। इसके लिए माननीय न्यायपालिका ने कुछ प्रमुख सिद्धांतों को विकसित किया है। जिसमें पीढ़ियों में समानता का सिद्धांत, पूर्व सावधानी का सिद्धांत, पोषणीय विकास का सिद्धांत, प्रदूषक भुगतान करें का सिद्धांत, लोक न्यास का सिद्धांत, पूर्ण दायित्व का सिद्धांत इत्यादि प्रमुख है।

पीढ़ियों में समानता का सिद्धान्त

पर्यावरण पर स्टाकहोम के 1972 के उद्घोषणा में इस बात पर बल दिया गया कि पर्यावरण संरक्षण समस्त विश्व की आवष्यकता है। प्रत्येक सरकार और प्रत्येक व्यक्ति का पवित्र दायित्व है कि वर्तमान और भविश्य की पीढ़ी को ध्यान में रख कर पर्यावरण की रक्षा और संवर्धन करें।

बाम्बे ड्राइंग एण्ड मैनुफैक्चरिंग कम्पनी लि0 बनाम बाम्बे इनवायरमेंटल ऐक्षन ग्रुप[1] इस वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि विकास की आवष्यकता के साथ-साथ पीढ़ियों के हित की उपेक्षा नही की जा सकती है। भविष्य की पीढ़ी की आवष्यकता को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने कहा कि प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक सम्पदा के मुख्य घटक है। जिसका एक ही पीढ़ी द्वारा उपयोग नहीं किया जा सकता है। न्यायपालिका के सराहनीय योगदान को ए0पी0 पालुषन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू[2] के वाद में देखा जा सकता है। जिसमें न्यायालय ने पर्यावरण के अधिकार को तश्तीय पीढ़ी के मानवाधिकार के रूप में वर्णित किया है। स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को अप्रतिदेय मानवाधिकार के रूप में स्थापित किया है।

पोषणीय विकास का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक और औद्योगिक विकास को पर्यावरण संरक्षण के साथ समायोजित किया जाना चाहिए। यह धारणा अब पुरानी हो गयी है कि विकास और पर्यावरण एक साथ नहीं रह सकते है। सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया कि पर्यावरण को नियंत्रित करने के लिए दो मुख्य सिद्धान्त है।[3]

1. पोषणीय विकास का सिद्धान्त
2. पूर्व सावधानी का सिद्धान्त

नर्मदा बचाओ आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया[4] -

इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने पोषणीय विकास के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए धारित किया कि विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक है। विकास का प्रत्येक पहलू पोषणीयता पर आधारित होना चाहिए।

प्रदूषक भुगतान करें

प्रदूषक भुगतान करे के सिद्धान्त को न्यायालय ने पोषणीय विकास के सिद्धान्त के एक अंग के रूप में विकसित किया है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार यह सिद्धान्त क्षतिग्रस्त पारिस्थितिकी के पुनर्स्थापन का एक उपकरण है एवं पूर्व सावधानी के रूप में संरक्षण है। इण्डियन काउंसिल फार इन्वायरो लीगल एक्षन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया[5] - इस वाद में राजस्थान राज्य के उदयपुर जिले के बिछरी गाँव में स्थित औद्योगिक इकाईयों द्वारा कारित क्षति को रोकने के लिए लोकहितवाद दायर किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त को लागू करते हुए प्रदूशणकारी इकाइयों को क्षतिपूर्ति तथा पर्यावरण की गुणवत्ता पुनः स्थापित करने हेतु खर्चा देने का आदेष दिया। इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने कहा कि यदि गतिविधि खतरनाक है, तो गतिविधि चलाने वाला व्यक्ति ऐसी गतिविधि से कारित हानि के लिए किसी भी दूसरे व्यक्ति की क्षति को पूरा करने के लिए दायी होगा भले ही उसने युक्तियुक्त सावधानी से गतिविधि जारी रखी हो।

लोक न्यास का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि राज्य प्राकृतिक संसाधनो को न्यासी के रूप मे जनसाधारण के लाभ के लिए धारण करेगा और उसकी सुरक्षा करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने एम0सी0 मेहता बनाम कमल नाथ[6] के वाद में घोषित किया कि हमारी विधिक व्यवस्था अंग्रेजी कामन लॉ पर आधारित है और लोक न्यास का सिद्धान्त विधिषास्त्र के भाग के रूप में इसमें शामिल है। राज्य प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन का न्यासी है। जो स्वाभाविक रूप से लोगो के प्रयोग व उपभोग के लिए आशायित है। लोग इसके लाभग्राही है और न्यासी के रूप में राज्य का विधिक कर्तव्य है कि इन संसाधनो का संरक्षण करे और निजी स्वामित्व में परिवर्तन न करें। इस प्रकार यह सिद्धान्त राज्य पर यह दायित्व आरोपित करता है, कि वह जन साधारण के उपयोग हेतु प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करें।

पूर्ण दायित्व का सिद्धान्त

लोकहितवाद के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी मामले में विनिश्चय करते हुए न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता और सृजनशीलता का परिचय दिया और कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। जिसमें से पूर्ण दायित्व का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार खतरनाक उद्योग या अन्तर्निहित खतरे वाले गतिविधियों को करने वाले उपक्रम का दायित्व है कि वह ऐसी गतिविधियों को करते समय सुरक्षा के उच्चतम स्तर का प्रयोग करें। ऐसी गतिविधियों से किसी व्यक्ति को क्षति पहुँचाने पर वह पूर्ण रूप से दायित्वाधीन होगा। यह तर्क नही ले सकता कि उसने युक्तियुक्त सावधानी बरती है।[7]

रायलैण्ड बनाम फ्लेचर के वाद में प्रतिपादित कठोर दायित्व के सिद्धान्त को ठुकराते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने एम0सी0 मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया[8] (ओलियम गैस लीक काण्ड) के वाद में घोषित किया कि हमें अपने विधि को विकसित करना है। यदि किसी असामान्य स्थिती में नये सिद्धान्त को प्रतिपादित करना आवष्यक प्रतीत होता है, तो हमें दायित्व के नये सिद्धान्त को विकसित करने में संकोच नहीं करना चाहिए। न्यायालय ने इस वाद में विधि का दो प्रमुख सिद्धान्त विकसित किया।

1. सर्वोच्च न्यायालय का उपचार प्रदान करने का अधिकार
2. बिना दोष के दायित्व (पूर्ण दायित्व का सिद्धान्त)

इस सिद्धान्त ने भारत में दायित्व और प्रतिकर सम्बन्धित विधि में विषद् परिवर्तन किया है।

पर्यावरणीय न्याय और विशिष्ट न्यायपालिका

हाल के दिनों यह मान्यता बढ़ रही है कि पर्यावरणीय मामलों में विशिष्ट विशेषज्ञता वाली अदालतें सतत विकास को

प्रोत्साहन देने के लिए ज्यादा प्रभावकारी हैं। विशिष्ट पर्यावरण न्यायपालिका से जुड़े लाभों में शामिल हैं–

1. जटिल कानूनी, वैज्ञानिक और तकनीकी मामलों में विशिष्ट विशेषज्ञता
2. नियमित अदालतों को उनके लगातार बढ़ रहे कार्यभार से राहत
3. निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में एकरूपता और निरंतरता
4. पर्यावरणीय विवादों का अधिक से अधिक समाधान और अधिक कुशल निर्णय
5. पर्यावरण सम्बन्धी निर्णयों में अधिक पूर्वानुमेयता
6. पर्यावरण के मामलों में अधिक से अधिक सरकारी जवाबदेही
7. सरकार और न्यायिक व्यवस्था में जनता के विश्वास का अधिष्ठापन
8. प्रभावी जन भागीदारी के लिए ''लोकस स्टैंडी'' की विस्तारित धारणा
9. वाद प्रक्रिया के खर्च में कमी
10. प्रक्रिया नियमों में लचीलापन लाना

राष्ट्रीय हरित अधिकरण

राष्ट्रीय हरित अधिकरण पर्यावरण संरक्षण, वनों के संरक्षण और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित मामलों के साथ-साथ पर्यावरण सम्बन्धी कानूनी अधिकारों के प्रवर्तन, व्यक्तियों और संपत्ति से सम्बंधित राहत और क्षतिपूर्ति मुहैय्या करने और इन सब से जुड़े या प्रासंगिक मामलों के प्रभावी और त्वरित निपटान के लिए एक विशेष न्यायिक निकाय है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण का गठन राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के तहत हुआ है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण का गठन 18 अक्टूबर 2010 को किया गया था। इसकी प्रधान पीठ नई दिल्ली में स्थित है। इसका संचालन 5 मई 2011 से शुरू हुआ।

प्रास्थिति का उदारीकरण

पर्यावरणीय मामलों में, जरूरी नहीं कि क्षति उस स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित हो जहां उद्योग स्थापित है। पर्यावरणीय क्षरण के प्रभावों का स्थानीय क्षेत्रों से आगे तक परिणाम हो सकते हैं। इसलिए, एक पीड़ित व्यक्ति को स्थानीय क्षेत्र का निवासी होने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह उस क्षेत्र का निवासी हो या नहीं, पीड़ित है या नहीं, इस न्यायाधिकरण से संपर्क कर सकता है।[9]

इस तरह के उदार व्याख्या की दो वजहें हैं–

1. अशिक्षित और कम पढ़े-लिखे ग्रामीण पर्यावरणीय मामलों और उसके संभावित नाकारात्मक परिणामों से अनजान हो सकते हैं। ऐसी स्थितियों में, कोई भी व्यक्ति, व्यक्तियों का समूह या निकाय जिसमे गैर सरकारी संस्था शामिल है। ग्रामीणों की ओर से संपर्क कर सकता है।

2. भारत के संविधान का अनुच्छेद 51 'क' (छ), प्रत्येक नागरिक पर, प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने का एक मौलिक कर्तव्य निर्धारित करता है।

राष्ट्रीय हरित अधिकरण : ऐतिहासिक निर्णय

1. अलमित्रा एच. पटेल बनाम भारत संघ (2012) - इस मामले में, राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने लैंडफिल सहित भूमि पर कचरे को खुले में जलाने पर पूर्ण प्रतिबंध आरोपित करने का फैसला दिया, इसे भारत में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के मुद्दे से निपटने वाला सबसे बड़ा ऐतिहासिक मामला माना जाता है।

2. श्रीनगर बाँध आपदा संघर्ष समिति बनाम अलकनंदा हाइड्रो पावर कंपनी लिमिटेड (2013) - इस मामले में,

अलकनंदा हाइड्रो पावर कंपनी लिमिटेड को याचिकाकर्ता को मुआवजा देने का आदेश दिया गया था यहाँ, राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने स्पष्ट तौर पर, ''प्रदूषक भुगतान करता है'' के सिद्धांत का पालन किया है।

3. सेव मोन फेडरेशन बनाम भारत संघ मामला (2013) - इस मामले में, ने एक पक्षी के आवास को बचाने के लिये 6,400 करोड़ रुपये की पनबिजली परियोजना को निलंबित कर दिया गया था।

4. वर्धमान कौशिक और अन्य बनाम भारत संघ (2015) - राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने आदेश दिया कि 10 साल से अधिक पुराने सभी डीजल वाहनों को दिल्ली में परिवहन की अनुमति नहीं दी जाएगी।

5. प्लास्टिक पर प्रतिबंध - राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने 2017 में दिल्ली में 50 माइक्रोन से कम मोटाई के प्लास्टिक बैग पर अंतरिम प्रतिबंध लगा दिया था। क्योंकि वे जानवरों की मौत का कारण बन रहे थे। सीवरों में फँसकर अवरोध उत्पन्न कर रहे थे। पर्यावरण को हानि पहुँचा रहे थे।

6. एन.जी. सोमन बनाम भारत पेट्रोलियम कंपनी लिमिटेड, कोच्चि और अन्य, (2022) - राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने अवैज्ञानिक तौर पर बनाए गए ग्रीनबेल्ट के लिये भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, कोच्चि रिफाइनरी पर 2 करोड़ रुपये का जुर्माना लगाया।

निष्कर्ष

कहते है कि ''मनुष्य जब पर्यावरण का अक्षम प्रहरी बनता है, तो सभ्यताएं नष्ट हो जाती है।'' हमारे देश के शीर्ष न्यायपालिका ने मानव जीवन में पारिस्थितिकी और पर्यावरण के महत्व को समझा है और पर्यावरण संरक्षण में उल्लेखनीय योगदान दिया है। जहां एक ओर माननीय न्यायालय ने स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को नैसर्गिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है वही दूसरी ओर पर्यावरण और पारिस्थितिकी के पुनर्स्थापन हेतु प्रदूषक भुगतान करे जैसे सिद्धान्तों का निर्माण किया है। पर्यावरण संबंधित मामलों में प्रास्थिति का उदारीकरण, विशिष्ट विशेषज्ञता वाली अदालतों के तौर पर राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना, पर्यावरणीय मामलों में अधिक से अधिक राज्य की जवाबदेही इत्यादि अनेक सकारात्मक पहल माननीय न्यायपालिका द्वारा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में किए गए है। जो प्रशंसनीय है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि शीर्ष न्यायपालिका ने स्वयं को देश के पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के एक सजग प्रहरी के रूप में स्थापित किया है ।

सन्दर्भ सूची

1. ए0 आइ0 आर0 2006 एस0 सी0 1489
2. (1992) 2 एस0 सी0 सी0 718
3. टी0 एन0 गोदावर्मन बनाम भारत संघ (2006) 1 एस0 सी0 सी0 42
4. (2000) 10 एस0 सी0 सी0 664
5. (1996) 3 एस0 सी0 सी0 212
6. (1997) 1 एस0 सी0 सी0 388
7. एम0 सी0 मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (1987) 1 एस0 सी0 सी0
8. ए0 आई0 आर0 (1987) 965
9. देखे- जन चेतना बनाम पर्यावरण और वन मंत्रालय (निर्णय 9 फरवरी 2012), गोवा फाउंडेशन बनाम भारत संघ (निर्णय 18 जुलाई 2013), अमित मारू बनाम पर्यावरण और वन मंत्रालय (निर्णय 1 अक्टूबर 2014)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के बाल साहित्य का अनुशीलन

डॉ. रचना शर्मा
सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबरेवाला विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान

परिचय

बाल साहित्य उस साहित्य को कहते हैं जिसे मुख्य रूप से बच्चों के लिए लिखा जाता है। इसमें कहानियाँ, कविताएँ, नाटक, और लेख शामिल होते हैं। इसका उद्देश्य बच्चों को मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा और नैतिक मूल्यों का परिपोषण करना होता है।बाल साहित्य बच्चों के मानसिक और भावनात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह न केवल उनके लिए मनोरंजन का स्रोत है बल्कि उनके मनोविज्ञान को भी गहराई से प्रभावित करता है।

बाल साहित्य की विशेषताएँ

1. "भाषा और शैली" : बाल साहित्य सरल और सहज भाषा में लिखा जाता है ताकि बच्चे इसे आसानी से समझ सकें।

2. "कथानक" : कहानियाँ रोमांचक और रोचक होती हैं, जिससे बच्चों का ध्यान आकर्षित हो सके।

3. "चरित्र निर्माण" : इसमें सकारात्मक और प्रेरणादायक चरित्र होते हैं जो बच्चों को प्रेरित करते हैं।

प्रमुख बाल साहित्यकार

1. "रवीन्द्रनाथ ठाकुर" : उनकी कविताएँ और कहानियाँ बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं।

2. "सुभद्रा कुमारी चौहान" : उन्होंने बाल कविताओं और कहानियों में नैतिक मूल्यों का समावेश किया है।

3. "महादेवी वर्मा" : उनकी रचनाओं में बच्चों के लिए प्रेरणा और शिक्षाप्रद तत्व होते हैं।

बाल साहित्य का महत्त्व बच्चों के मानसिक, नैतिक और शैक्षिक विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। यह साहित्य बच्चों के जीवन में मनोरंजन और शिक्षा के माध्यम से सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य करता है।

बाल साहित्य की कहानियों के कुछ अंश

यहाँ कुछ प्रमुख बाल साहित्य की कहानियों के अंश और उनके संदर्भ दिए गए हैं–

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "छुट्टी"

"अंश" : "मुझे आज स्कूल नहीं जाना है। आज मेरी छुट्टी है। पर इस छुट्टी का क्या करूँ? मैं अकेला हूँ, मेरा कोई साथी नहीं है। माँ, क्या तुम मेरे साथ खेलोगी?"[1]

सुभद्रा कुमारी चौहान की "खिलौनेवाला"

"अंश" : "गली-गली में फिरता है खिलौनेवाला, बच्चों को दे खुशियाँ, लेता है ये माला। उसकी आँखों में बसता है

बच्चों का संसार, खिलौने बेचकर ही बनता है उसका परिवार।"[2]

महादेवी वर्मा की "गिलहरी का घर"

"अंश" : "गिलहरी अपने छोटे से घर में खुश रहती थी। उसका घर एक पुराने पीपल के पेड़ की खोखल में था। वह दिनभर नटखट बच्चों के साथ खेलती और शाम को अपनी माँ के पास लौट आती।"[3]

प्रेमचंद की "ईदगाह"

"अंश" : "हामिद अपनी दादी के साथ ईदगाह जाता है। उसके पास केवल तीन पैसे होते हैं, लेकिन वह अपनी दादी के लिए एक चिमटा खरीदता है, ताकि उसकी दादी को रोटियाँ पकाते समय जलन न हो।"[4]

भगवती चरण वर्मा की "भोलू का सपना"

"अंश" : "भोलू रात को सोते समय सपने देखता है कि वह एक राजा बन गया है। उसके पास बहुत सारे खिलौने और मिठाइयाँ हैं, लेकिन सुबह जब उसकी आँख खुलती है तो वह अपनी छोटी सी झोपड़ी में होता है।"[5]

डॉ. नरेश सिहाग की कहानियां

बोहल की बाल साहित्य कहानियों के कुछ क़िस्से

सहयोग की भावना

बहुत समय पहले की बात है, एक छोटे से गाँव में कुछ मित्र रहते थे। इनमें से एक या मोशन, दुसरा रामू और तीसरा था राजू। ये तीनों बचपन से ही एक-दूसरे के आधे दोसा और हमेशा साथ रहते थे। गाँव के लोग इन्हें बहुत प्यार करते थे, क्योंकि ये हमेशा एक-दूसरे की मदद करते थे और किसी भी मुश्किल वक्त में एकजुट राहते थे।

एक दिन गाँव में भारी बारिश शुरू हो गई। नदी का पानी कड़ने लगा, और गाँव के पास के खेतों में बाढ़ का खतरा मंडराने लगा। गाँव के लोग पबराए हुए थे, क्योंकि बाढ़ जाने पर उनके घर और फसलें बह सजती थीं। सभी लोग अपनी-अपनो सुरक्षा को लिए वितित थे, लेकिन गाँव के को-पूड़े समझाने लगे कि अगर सभी मिलकर काम करें, तो वे इस संकट से उबर सकते हैं।[6]

चालाक लोमड़ी की कहानी

बहुत समय पहले की बात है, एक घने जंगल में एक चालाक लोमड़ी रहती थी। उसका नाम थी मिंटी। निंटी बहुत ही चतुर और फुर्तीली थी, और हमेशा अपने चाताकी से दूसरों को धोखा देती थी। लेकिन, उसकी चतुराई हमेशा उसे मुसीबत में डाल देती थी। एक दिन, मिंटी जंगल के एक हिस्से में घूम रही थी। अचानक, उसे देखा कि एक बड़ा जोर तयहा बकरा अपने झुंड से अलग होकर जंगल में पुत्त आया था। बकरा ताजगी से भरा हुआ था और उसे देखकर मिटरी के पेट में हलचल मच गई। यह सोचने लगी, जगर मैंने इस बकरे को फंसाया तो मुझे काफी स्वादिष्ट खाना मिलेगा। मिंटी ने बकरा से बात करने का सोचा और उसे अपने जाल में फंसाने के लिए एक चाल बनाई। वह बकरे के पास गई और मीठे शब्दों में बोली, श्नमस्ते भाई। तुम तो बहुत खूबसूरत बकरा हो। सुना है कि तुम जंगल के सबसे मजबूत और बुद्धिमान बकरा हो। क्या तुम मुझे अपने साय चलकर जंगल की सबसे अच्छे वास के मैदान की खोज में मदद करोगे?[7]

चूहे की चतुराई

बहुत समय पहले की बात है, एक बड़े से घर में चूड़े का एक तोटा सा परिवार रहता था। उस घर में तरह-तरह की चीजें पड़ी रहती थीं, जिससे चूहे बहुत खुश रहते थे। खाने-पीने के लिए उन्हें हमेशा कुल न कुछ मित जाता था। लेकिन घर में एक बड़ी समस्या थी-एक शिकार करने वाला बिल्ली, जिसका नाम मयी था। मयो बहुत चालाक और ताकतवर श्री, और यह हमेशा चूहों को पकड़ने की फिराक में राहती थी।

एक दिन, मयो ने घर में भूमते हुए एक चूड़े को देखा। उसने शपट्टा मारा, लेकिन चूहा जल्दी से भाग गया और एक छेद में लिप गया। मयो बहुत गुस्से में आ गई और उसने मन ही मन सोचा, श्मैं इन चूहों को पकड़ कर रहूँगी, चाहे जो भी

हो।[8]

सिंहलद्वीप की राजकुमारी

बहुत समय पहले की बात है, एक दूर-दराज द्वीप पर सिंहल नामक एक राजा था। इस तन्म में एक सुंदर और बुद्धिमान राजकुमारी रहती थी, जिसका नाम वा कुमारीदी। कुमारीदी का रूप उतना ही आकर्षक था जितना कि उसकी बुद्धि। का न केवल अपने राज्य में बल्कि वासपास के देशों में भी प्रसिद्ध थी। उसकी खासियत थी कि वह कभी भी किसी भी समस्या का समाधान बने पैर्य और समझ से करती थी।

राज्य के लोग उसे बहुत प्यार करते थे, क्योंकि यह हमेशा अपनी प्रजा के भत्ते के लिए काम करती थी। उसकी दया और विनम्रता ने उसे राजमहल से बाहर भी एक आदर्श बना दिया था। कुमारीदी का सपना वा कि वह अपने राज्य को एक ऐसे स्थान में बदल दें, जहाँ लोग न केवल शारीरिक रूप से खुश रहें, वल्कि मानसिक रूप से भी ज्ञाति का अनुभव करें।[9]

अर्जुन ने पहले खजाने को बहुत समझदारी से खोजा, फिर जादुई कन में अपने साहस और बुद्धिमानी से राक्षस को हराया, और सबसे महत्वपूर्ण बात, उसने प्रजा वो साथ मिलकर उनके दिलों में विश्वास और प्रेम पैदा किया। अर्जुन ने जो किया, वह किसी भी अन्य प्रतियोगी से कहीं अधिक मूत्वधान था। वह केवल एक चीर नहीं था, बल्कि एक सच्चा नेता था। राजकुमारी कुमारीदी ने अर्जुन को विजेता घोषित किया और उसे राज्य का राजा बना दिया। अर्जुन और कुमारीदी के विवाह के बाद, सिंहल राज्य में शांति, समृद्धि और खुशहाली आई। वे दोनों मिलकर राज्य को न्याय और प्यार से शासित करते थे, और लोग उन्हें आदर्श शासक मानते थे।

सीख : इस कहानी से यह सिखने को मिलता है कि सच्चे नेता ये होते हैं, जो अपनी शक्ति और धन से नहीं, बल्कि अपने साहस, बुद्धिमानी, और प्रेम से दूसरों के दिलों को जीतते हैं।[10]

उपकार का ऋण

एक छोटे से गाँव में एक ताड़का नामक मोहन रहता था। वह गरीब या, लेकिन दिल से वहन बच्छा और मददगार था। उसका एक छोटा सा परिवार था उसकी मी और छोटे भाई-बहन। मोहन हर रोज गाँय के खेतों में काम करता था, ताकि अपने परिचार का पालन-पोषण कर सके।

एक दिन गाँव में एक बड़ा तूफान आया। आंधी-तूफान ने गाँव के सारे घरों को तबाह कर दिया। मोहन का घर भी पूरी तरह से नष्ट ही गया था। उसके पास कोई और ठिकाना नहीं चा और उसकी माँ और छोटे नाई-बहन भी मुश्किल में थे।[11]

बाल साहित्य की विशेषताएँ

1. "भाषा और शैली" : बाल साहित्य में भाषा सरल और सहज होती है, जिससे बच्चे आसानी से समझ सकें। इसका उद्देश्य बच्चों में रचनात्मकता और कल्पनाशीलता को प्रोत्साहित करना होता है।

2. "कथानक और विषय वस्तु" : बाल कहानियों और कविताओं का कथानक रोचक और प्रेरणादायक होता है। इनमें नैतिक कहानियाँ, परी कथाएँ, विज्ञान कथाएँ और साहसिक कहानियाँ प्रमुख होती हैं।

3. "चित्रण और स्वरूप" : बाल साहित्य में चित्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। चित्र बच्चों की समझ को आसान बनाते हैं और उन्हें पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

बाल साहित्य का मनोविज्ञान पर प्रभाव

1. "भावनात्मक विकास" : बाल साहित्य बच्चों को विभिन्न भावनाओं को समझने और व्यक्त करने में मदद करता है। कहानियों के माध्यम से बच्चे खुशी, दुख, डर, साहस आदि भावनाओं को महसूस और पहचान सकते हैं।

2. "सामाजिक और नैतिक शिक्षा" : बाल साहित्य नैतिक और सामाजिक मूल्यों को सिखाने का प्रभावी माध्यम

है। कहानियों में सिखाए गए नैतिक सबक बच्चों के व्यवहार और दृष्टिकोण को आकार देते हैं।

3. "रचनात्मकता और कल्पनाशीलता" : बाल साहित्य बच्चों की रचनात्मकता और कल्पनाशीलता को प्रोत्साहित करता है। कहानियों और कविताओं के माध्यम से बच्चे नई दुनियाओं और संभावनाओं का अन्वेषण कर सकते हैं।

4. "भाषाई विकास" : बाल साहित्य बच्चों की भाषा और शब्दावली को समृद्ध करता है। सरल और रोचक भाषा का प्रयोग बच्चों की भाषा समझ और अभिव्यक्ति को बेहतर बनाता है।

निष्कर्ष

बाल साहित्य बच्चों के मनोरंजन के साथ-साथ उन्हें शिक्षित और संस्कारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके माध्यम से बच्चों में रचनात्मकता और नैतिकता का विकास होता है। बाल साहित्यकारों का योगदान अनमोल है और उनके द्वारा रचित साहित्य बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है।बाल साहित्य बच्चों के मानसिक, नैतिक, और शैक्षिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके माध्यम से बच्चों में रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और नैतिकता का विकास होता है। बाल साहित्यकारों का योगदान अनमोल है और उनके द्वारा रचित साहित्य बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है।

संदर्भ

1. बाल कविताएँ', पृष्ठ 12
2. बाल कहानियाँ', पृष्ठ 23
3. 'बाल साहित्य की नई दिशाएँ', पृष्ठ 45
4. प्रेमचंद की कहानियाँ' पृष्ठ 67
5. बाल कहानियों का संग्रह', पृष्ठ 15।
6. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, पृष्ठ 19
7. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, पृष्ठ 21
8. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, पृष्ठ 23
9. सिहालदीप की राजकुमारी, पृष्ठ 9
10. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, पृष्ठ 11
11. सिंहलद्वीप की राजकुमारी पृष्ठ 10

सहायक ग्रंथ सूची

1. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, 'बाल कविताएँ'. कोलकाता, विश्व भारती, 1955
2. चौहान, सुभद्रा कुमारी. 'बाल कहानियाँ', दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 1962
3. वर्मा, महादेवी. 'बाल साहित्य की नई दिशाएँ', इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, 1978
4. गुप्ता, अम्बिका प्रसाद. 'हिन्दी बाल साहित्य का विकास', पटना, बाल साहित्य संसाधन केंद्र, 1984
5. शर्मा, सुरेश. 'बाल साहित्य का समाजशास्त्र', जयपुर, साहित्यागार, 1990
6. सिहाग, डॉ. नरेश, 'सिंहलद्वीप की राजकुमारी', एस एस पब्लिकेशंस दिल्ली, प्रथम संस्करण 2025
7. प्रेमचंद, मुंशी, 'प्रेमचंद की कहानियाँ', वाराणसी, सरस्वती प्रेस, 1938
8. वर्मा, भगवती चरण, 'बाल कहानियों का संग्रह', लखनऊ, नवल किशोर प्रेस, 1942

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

'कामायनी' के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद का सौन्दर्य-बोध

डॉ. श्वेता दीप्ति
हिन्दी केन्द्रीय विभाग
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, कीर्तिपुर
काठमान्डू, नेपाल

शोध-सार

छायावादी काव्य सौंदर्य का अपूर्व भंडार है। आखिर सौंदर्य का महत्व क्या है? क्या कोई भी मनुष्य सौंदर्य से अप्रभावित रह सकता है? नहीं, क्योंकि सौन्दर्य हमारी चेतना को जागृत कर उसे उदात्त बनाता है। साहित्य में सौंदर्य चेतना से आशय है कि कवियों की बुद्धि या विवेक में सौन्दर्य गढ़ने का क्या नया विजन था? उनकी सौन्दर्यानुभूति का स्वरूप क्या था? इस स्वरूप की जड़े परंपरा में कहां तक फैली हुई थीं? प्रस्तुत आलेख में सौन्दर्य के इसी परिप्रेक्ष्य में प्रसाद रचित 'कामायनी' का विश्लेषण किया गया है। 'कामायनी' में प्रसाद ने सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है–

"उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जागते रहते हैं।"[1]

यहां ध्यान देने की बात है कि प्रसाद उसी को सुंदर मानते हैं, जो हमारी चेतना में नई आशा अभिलाषा के सपने जगाता है।

शब्द-कुंजी : छायावाद, सौन्दर्य, चेतना, मन, प्रकृति,मनु, श्रद्धा, इड़ा, आत्मा, सभ्यता, मानव

विषय प्रवेश

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट साहित्य स्रष्टा माने जाते हैं। प्रसाद की प्रतिभा सूर, तुलसी और कबीर से भिन्न, कल्पनाप्रवण और भावुक और सुकुमार प्रतिभा हैं। छायावाद के उन्नायक महाकवि जयशंकर प्रसाद रचित मानव सभ्यता के विकास के अभिसूचक 'कामायनी' में मानव मन, प्रेम, प्राकृतिक वैभव इन सभी तथ्यों में सौन्दर्य की अद्भुत चेतना प्राप्त होती है। सौन्दर्य की उत्पत्ति 'सु' उपसर्ग, 'उन्द' धातु और 'अरनय' प्रत्यय से माना गया है। 'उन्द' का अर्थ है– आद्र करना, अरनय कृतवाच्य का प्रत्यय है। 'सु' का अर्थ है–भलीभाँति आद्र करने वाला। इस प्रकार सुन्दर का अर्थ होता इस सुन्दर को आद्र करने वाला अथवा आनंद प्रदान करने वाला गुण सौन्दर्य है। सामान्यतः 'सौन्दर्य' वस्तु का एक गुण विशेष है, जो मन को मुग्ध और आकृष्ट करता है। इसमें चित्ताकर्षकता और मनोमुग्धकारिता का गुण विद्यमान होता है। मानव प्राण में प्रेम और सौन्दर्य की भावना अनादि काल से उसके हृदय की धड़कन और रक्त की लालिमा में विद्यमान है। साधारण मानव जहाँ इसका अनुभव करके ही रह जाता है, वहाँ कवि इस भावना की मधुर अभिव्यक्ति करके संतोष प्राप्त करता है। साहित्य का अधिकांश अंश प्रेम और सौन्दर्य को आधार बनाकर ही लिखा गया है। प्रेम के आकर्षण का मूलाधार भी सौन्दर्य को माना

गया है। सौन्दर्य भी आकर्षण शक्ति से युक्त है, जिसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक माना गया है। साहित्य के क्षेत्र में सौन्दर्य के दो रूप मान्य है; 1) बाह्य सौन्दर्य और 2) आन्तरिक सौन्दर्य। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि सौन्दर्य बाहर की नहीं बल्कि मन के भीतर की वस्तु है। पंत जी का भी कहना है कि अकेली सुन्दरता कल्याणी सकल ऐश्वर्यो का संधान है। हिन्दी साहित्य में आरम्भिक काल से ही सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कवियों के काव्य में होता आया है। अतः सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी कवि जयशंकर प्रसाद के काव्य में भी सौन्दर्य की विस्तृत आभा वर्णित हुई है। उनका अविर्भाव आधुनिक काल में हुआ था, जबकि सौन्दर्य के प्रति एक नवीन चेतना तथा धारणा का जन्म हो रहा था, जिससे प्रसाद जी भी प्रभावित हुए। उन्होंने इसी नवीन चेतना एवं धारणा को अपने काव्य में संजोया है। किन्तु छायावाद से एक लेखक वर्ग को यह शिकायत रही कि छायावाद ने अर्थ बोध को संकुचित कर दिया। उनका मानना था कि, "सौन्दर्य, दुख, कष्ट, लक्ष्य, आदर्श, क्रोध, क्षोभ का चित्रण जो छायावाद में हुआ है वह वास्तविक मनोदशाओं का नहीं वरन् कलिप्त दुख, कष्ट, क्रोध, क्षोभ आदि का है। छायावादी मनोदशा वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करती।"[2]

ऐसे आरोपों के बावजुद "सम्पूर्ण छायावादी काव्यधारा में प्रसाद एक ऐसे अकेले कवि हैं जिनका काव्य व्यक्तित्व क्रमशः उत्तरोत्तर और निरन्तर रचनात्मक, आधुनिक और विकसित होता गया है। इस लिहाज से उनकी काव्यचेतना और चेष्टा का लगातार अतिक्रमण करती है। इस अतिक्रमण की प्रकृति, अन्तर्विरोधी नही. है, एक निरन्तरता और काव्यव्यक्ति की संश्लिष्टता बराबर बनी हुई है। उनके ब्रजभाषा काव्य या चित्राधार से शुरू होनेवाली जो काव्य यात्रा 'कामायनी' में सम्पन्न होती है, उसके काव्य वृत्त लगातार विस्तृत होते हैं।"3

'कामायनी' की कथा का प्रवल प्रवाह हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर के उत्स से प्रस्रवित होती हुई, प्रथम सारस्वत नगर की समतल भूमि को रस स्निध करता है तत्पश्चात् अन्तिम परिणति के समय कैलाश पर आनन्द अम्बु निधि में पर्यवसित हो जाता है। कामायनी के उषा, संध्या, दिवस, रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, आकाश और वन पर्वत आदि के अनेक चित्र हृदय को आह्लादित करते हैं। अंत में तो हृदय का आनंद प्राकृतिक सौंदर्य से उत्पन्न आनंद से समन्वित होकर एक परम आनन्द की सृष्टि कर देता है।

उनके सम्पूर्ण काव्य में सौन्दर्य के तीन स्वरूप दृष्टिगत होते हैं—मानवीय रूप सौन्दर्य, प्राकृतिक रूप सौन्दर्य और भावगत् रूप सौन्दर्य।

1. मानवीय रूप सौन्दर्य— मानवीय रूप सौंदर्य का मतलब है, व्यक्ति की बाहरी सुंदरता के साथ—साथ उसकी आंतरिक सुंदरता भी। आंतरिक सुंदरता को अक्सर नैतिक या सद्गुण चरित्र लक्षणों के संदर्भ में समझा जाता है। सौंदर्य को सामान्य तौर पर वस्तुओं की एक खासियत के रूप में देखा जाता है, जो उन्हें देखने में आनंददायक बनाती है। सुखद विचारों की भाव—तरंगें, सादगी के उपकरण मिलकर सौंदर्य का निर्माण करते हैं। सौंदर्य का विकास प्रेम और कर्त्तव्य—भावना से होता है। मन को सद्गुणों से आरोपित करने में ही मनुष्य का सच्चा सौंदर्य सन्निहित है। मानवीय रूप सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रसाद ने स्त्री—पुरूष के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन बड़े मनोयोग से 'कामायनी' में किया है। कामायनी एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें स्त्री सौन्दर्य ही नहीं, पुरुष सौन्दर्य का वर्णन भी अत्यन्त सुक्ष्मता के साथ किया गया है—

'कामायनी' के मुख्य पात्र मनु के सुदृढ़ शरीर तथा अपार वीर्य का वर्णन उन्होंने बड़ी सजीवता से किया है—

"अवयव की दृढ मांस-पेशियाँ उर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का होता था संचार।"[4]

अवयवों की संपुष्टता के अभिधान द्वारा कवि ने मनु के शारीरिक आकर्षण और बल का निर्देश किया है। इस छोटे से पद्य में कवि ने मनु के व्यक्तित्व का आकर्षक चित्रांकन किया है। प्रत्येक शब्द नपातुला और अर्थव्यंजक है। पंक्तियों में प्रयोग किए गए ऊर्जा और वीर्य पर्यायवाची हैं। वीर्य और ऊर्जस्वित कह कर कवि ने मनु के बल की अतिशयता का प्रकाशन किया है। उपयुक्त विशेषणों का का प्रयोग चमत्कार वर्धक है।

"चिंता कातर बदन हो रहा पौरुष जिसमें ओत प्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत।"[5]

मनु के शारीरिक सौष्ठव का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि उस पुरुष का अंग अंग पुरुषोचित शौर्य से परिपूर्ण था, वह हताश है किन्तु उसके अंतर में युवावस्था के अनुरूप मधुर, सुखद एवं मादक भावों की धारा बह रही है। मनु के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन चिंता सर्ग में मिलता है। साथ ही देवताओं के विलासिता के वर्णन में भी कवि का सौन्दर्य बोध झलकता है–

"अब न कपोलों पर छाया सी पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुज मूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप।"[6]

"यहाँ पर कवि ने बिंब ग्रहण का बहुत कुछ दायित्व पाठक की प्रतिभा पर डाल दिया है। उसने यह निर्देश नहीं किया कि किसके मुख की भाप किसके कपोलों पर पड़ती थी अथवा किसके वस्त्र भुज मूलों तक फैल जाते थे। फलतः विद्वानों अपनी अपनी प्रज्ञा के अनुसार अनुमान लगाये हैं। पहले प्रश्न का समाधायक उत्तर यह है कि प्रेमिकाओं के कपोलों पर प्रेमियों के मुख की भाप पड़ती थी, मनु सुरांगना के कपोलों पर झलकती हुई छाया को ही देख सकते थे, अपने कपोलों पर पड़ती हुई छाया को देख पाना संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त युवतियों के कपोलों की बिम्ब योजना में ही काव्यात्मक सौंदर्य है।"[7]

हालांकि 'कामायनी' में मनु की अपेक्षा श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने अत्यन्त मुखरता के साथ किया है।

"और देखा वह सुंदर दृश्य नयन का इंद्रजाल अभिराम
कुसुम वैभव में लता समान चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।"[8]

श्रद्धा का चिताकर्षक रूप ऐसा था मानो कोई जादुई रचना हो। उस कृशांगी की देह लता फूलों के ऐश्वर्य से संपन्न वल्लरी के सदृश शोभायमान थी। उसके गोरे शरीर पर नीला परिधान ऐसा लग रहा था मानो नीला मेघ चाँदनी से लिपटा हुआ हो।

श्रद्धा के रूप सौन्दर्य वर्णन में प्रसाद ने उसके बाह्य गुणों को आन्तरिक सौन्दर्य से मिला दिया है। श्रद्धा की उन्मुक्त तथा उदार काया को उन्होंने उसकी आन्तरिक उदारता का परिचायक बताया है;

"हृदय की अनुकृति वाह्य उदार, एक लम्बी काया उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीड़ित ज्यो शिशु शाल, सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।"[9]

श्रद्धा का रूप ऐसा था मानो उसके अंतःकरण की उदात्तता, महत्ता एवं अमायिकता ही शरीर के रूप में साकार हो गई हो। वसंत के शीतल मंद समीर से आंदोलित और सुगंधमय कोई छोटा सा साल वृक्ष शोभायमान हो। "प्रसाद ने श्रद्धा को हृदय का प्रतीक माना है। उनकी दृष्टि में श्रद्धा आदर्श नारी है, इसलिए उसके तन और मन में एकरूपता है। हृदय का सौन्दर्य ही तो आकृति ग्रहण करता है, तभी मनोहरता रूप में आती है।"[10]

इसी प्रकार बाह्य अनुकृति का वर्णन करते हुए प्रसादजी नीले वस्त्र से आच्छादित श्रद्धा के गौर वर्ण और सुकुमार अंगों के सौन्दर्य को बिजली के फूल के समान दैदीप्यमान बताते हैं–

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।"[11]

यहाँ कवि की सौंदर्य दृष्टि की सूक्ष्मता का पता चलता है। नीले वस्त्र के बीच से दृश्यमान गोरे अंग के सम्मोहक सौंदर्य की मार्मिक अनुभूति कराने के लिए कवि ने मेघवन में खिले हुए बिजली के फूल की मनोहारिणी उत्प्रेक्षा की है। प्रसाद ने मेघ वन के रुपक की निबंधना और बिजली के गुलाबी फूल की संकल्पना द्ववारा उत्प्रेक्षा के लालित्य में चार चाँद लगा दिए हैं। 'गुलाबी रंग' श्रद्धा की स्वस्थता एवं उसकी नैसर्गिक शोभा का द्योतक है।

"आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घन श्याम
अरुण रवि मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।"[12]

श्रद्धा के नयनाभिराम मुख का सौंदर्य अद्भुत था। काले कुंचित केशों से घिरा हुआ उसका गोरा रंग, कांतिमान एवं लालिमा युक्त मुखमंडल ऐसा आकर्षक लगता था मानो संध्या समय पश्चिम के आकाश में काले बादलों की घटा को चीरकर दृष्टिगोचर सूर्य का दीप्तिमय, रागरंजित और मनोहर बिंब शोभायमान हो। कामायनी का श्रद्धा सर्ग प्रसाद की सौन्दर्य चेतना के अद्भुत रंगों से रंगा हुआ है।

श्रद्धा के समान इड़ा के रूप सौन्दर्य का वर्णन भी प्रसाद ने बड़ी ही सजगता से किया है। इस सौन्दर्य चित्रण में उन्होंने जिन विशिष्ट उपमानों का प्रयोग किया है, वे अप्रतिम हैं।

"उस रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुन्दर बाला
वह नयन महोत्सव की प्रतीक अम्लान नलिन की नव माला
सुषमा का मंडल सुस्मित सा बिखराता संसृति पर सुराग
श्यामल कलरव सब जाग उठे, सोया जीवन का तम विराग।"[13]

इड़ा का आगमन और उसकी सौन्दर्य का वर्णन कवि उक्त पंक्तियों से करते हैं। इड़ा का मोहक सौंदर्य नेत्ररंजनकारी है। वह खिले हुए कमल के ताजे फूलों की माला के समान सर्वांग सुन्दरी है। जैसे अरुण रवि मंडल संसार पर राग लालिमा फैला देता है, वैसे ही इड़ा की मधुर मुस्कान से अनुराग बरस रहा है। यहाँ कवि इड़ा का नाम उद्धृत किए बिना है उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। इड़ा के लिए 'बाला' शब्द का प्रयोग किया गया है, बाला अर्थात् सौभाग्यशालिनी, प्राणदायिनी तथा षोड्शी युवती। 'नवल' विशेषण का प्रयोग कर इड़ा की मनोहरता और नवयौवनावस्था को व्यंजित किया गया है।

इडा के अद्भुत रूप का नख शिख वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–

"बिखरी अलके ज्यों तर्क लाज
यह विश्व मुकुट सा उज्ज्वल तम शशि खंड सदृश्य था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाष चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब ज्ञान विज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल।"[14]

इस एक गीत में इड़ा के रूप लावण्य का शिख नख वर्णन लालित्य की ददृष्टि से साहित्य में बेजोड़ है। कवि ने उसके विशिष्ट अंगों का संक्षिप्त एवं अलंकृत शैली में रमणीय चित्रण किया है। इसमें इड़ा की प्रतीकात्मकता के अनुरूप दार्शनिक संकेत भी निहित हैं।

प्राकृतिक रूप सौन्दर्य–प्रकृति को सौन्दर्य का अक्षय भंडार कहा गया है। प्रकृति से जन्म से ही सम्बन्धित रहने के कारण मानव प्रकृति से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। यही प्रकृति अनादिकाल से कवियों की सहचरी बनकर उन्हें काव्य रचना की प्रेरणा देती रही है। प्रकृति के प्रति प्रसाद जी के हृदय का तीव्र आकर्षण है एवं उनका यह असीम प्रकृति–प्रेम उनकी कविताओं में भली–भाँति व्यक्त हुआ है। सत्य तो यह है कि कवि की ह्रदयानुभूतियों ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। प्रकृति के हास–विलास, राग–विराग, उसकी चेतना में कवि अपने को घुला–मिला देता है। कवि की भाँति ही प्रकृति हँसती है, रोती है तथा प्रेम की विविध क्रीड़ाओं में रत रहती है। कभी वह नेत्र निमिलन करती है, कभी अंगड़ाई लेती है तथा कभी नववधू के समान मान करती है। वास्तव में प्रकृति का यह मानवीकरण प्रसाद जी के सौन्दर्य चेतना बोध की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रकृति के मानवीय चित्रों में प्रसाद जी का छायावादी रूप स्पष्टतः मुखरित हुआ है। इस प्रकृति–चित्रण में एक और बात महत्वपूर्ण है वह यह कि जीवन के प्रति कवि प्रसाद का दृष्टिकोण जिस तरह सौन्दर्यमय,

भावुक एवं रोमाण्टिक है, उसी तरह प्रकृति के सौन्दर्यमयी पथ को, उसके वैभव एवं विलास को, उसके सरस तथा मादक रूप को कवि ने अधिक चित्रित किया है। प्रकृति के कोमल ही नही, कठोर चित्र भी प्रसाद जी ने उतारे हैं। प्रकृति के माध्यम से उनकी रहस्य भावना भी मुखरित हुई है। यही नहीं आलम्बन, उद्दीपन, संवेदनात्मक, आलंकारिक आदि सभी रूप प्रसाद जी के प्रकृति-चित्रण में मिलते हैं।

प्रसाद जी की प्रकृति के प्रति दो प्रकार की भावनाएं हैं। एक तो जिज्ञासा की, जिसके अनुसार वे सोचते हैं कि प्रकृति को यह सौन्दर्य मिला कहाँ से और दूसरी भावना है मुग्ध होने की। रति उनका हृदय पक्ष है, जिज्ञासा उनका मस्तिष्क पक्ष। प्रकृति के परिवर्तनशील रूप को देखकर सहज ही कवि के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती हैं;

"छिप जाते हैं और निकलते, आकर्षण में खिंचे हुए.
तृण, वीरूध लहलहे हो रहे, किसके रस से सिंचे हुए?"[15]

यहाँ कवि की जिज्ञासा भाव का आरोपण हुआ है। ये ग्रह, नक्षत्र और तारे किस महाशक्ति से आकृष्ट होकर, उसके द्वारा प्रेरित होकर कभी अस्त हो जाते हैं एवं कभी उदित होते हैं? धरातल पर विकसित ये घास फूस और पेड़ पौधे किसके रस से सिंचति होकर इतने हरे भरे तथा प्रफुल्लित हो रहे हैं? अर्थगर्भित रस शब्द में श्लेष के सन्निवेश से उक्ति रमणीय हो गई है।

उन्होंने प्रकृति पर चेतनता को आरोपित करते हुए उसे मानव चरित्र से संबंधित किया है, जिसमें कल्पना की गहरी पैठ है, विशिष्ट भाव लोक है एवं मानव हृदय को भावविभोर कर देने वाली सौन्दर्य का विधान है। 'कामायनी' प्रसाद के प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम रूप है। इसमें स्थान–स्थान पर कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य को दर्शाया है–

"पगली, हाँ सम्हाल कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल।"[16]

कवि ने अधिकांशतः सागर और हिमालय का वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में जीवन की सुन्दरता और पवित्रता का सम्मिश्रित रूप हिमालय है–

"विश्व कल्पना सा ऊँचा वह, सुख शीतल संतोष निदान।
और डुबती सी अचला का, अवलम्बन मणि रत्न निधान।
अचल हिमालय का शोभनतम लता कलित शुचि सानु शरीर,
निद्रा में सुख स्वप्न देखता जैसे पुलकित हुआ अधीर।
उमड़ रही जिसके चरणों में नीरवता की विमल विभूति
शीतल झरणों की धारायें बिखराती जीवन अनुभूति।
उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुस्कान
मानो हँसी हिमालय की है फूट चली करती कल गान।"[17]

कवि की दृष्टि हिमालय के विराट सौंदर्य को देखती है और उसका भव्य निरुपण करती है। हिमालय डूबती सी अचला का अवलंब बना है। इस समासोक्ति में पुरुष द्वारा नारी के उबारे जाने का बिंब मार्मिक है। हिमालय का अत्यंत मनोहर एवं पावन शिखरों वाला शरीर लताओं के प्रतान से युक्त होने के कारण ऐसा चित्ताकर्षक लग रहा है मानो वह निद्रावस्था में है और आनंददायक स्वप्न देखकर रोमांचित हो रहा है। हिमालय और धाराओं का मानवीकरण किया गया है। हिमालय पर कल कल नाद करते हुए प्रवहमान झरनों के स्वच्छ जल को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो नील नभ रूपी परिधान के आँचल की ओट से मुस्कुराती हुई किसी सुंदरी की मुस्कान के जवाब में हिमालय खिलखिला कर हँस पड़ा हो और उसकी हँसी संगीतात्मक मधुर ध्वनि करती हुई झरनों की धारा के रूप में बह चली हो। प्रस्तुत पद्य में संश्लिष्ट बिंब योजना एवं श्लेष तथा उत्प्रेक्षा का सांदर्य अवेक्षणीय है। उपमेय झरनों के उपमान रुप में हँसी की कल्पना मनोहारी है।

प्रकृति को अपना उपादान बनाकर मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करना ही उनके काव्य की विशेषता

है।

भावगत रूप सौन्दर्य—प्रसादजी ने अपने काव्य में अमुर्त भावों को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है। 'कामायनी' के चिन्ता, वासना, लज्जा आदि सर्गों में अमूर्त भावों को ही प्रधानता मिली है। चिन्ता को सर्पिणी के समान माना गया है, जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है;

"ओ चिन्ता की पहली रेख, अरी विश्व वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीतर, प्रथम कम्प सी मतवाली।"[18]

इसी प्रकार वासना को भी कवि ने अपनी भावना से समन्वित कर बताया है कि वासना के उदित होने पर प्रकृति में भी परिवर्तन आ जाता है। चन्द्रमा की किरणें मधु बरसाती हुई प्रतीत होती है, समीर मन्द गति से बहने लगता है—

"मधु बरसाती विधु किरण है कॉपती सुकुमार,
पवन में है पुलक मन्थर, चल रहा मधु—भार।
तुम समीप, अधीर इतने कयों हैं प्राण?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त हो घाण।"[19]

निष्कर्ष

प्रसाद सौन्दर्य पर बलिहार होने वाले कवि हैं। उनके काव्य में सुकुमार सौन्दर्य विद्यमान है, जिसमें हृदय के कोमल और मधुर भावों को जगाकर जीवन को उदात्त बनाने की पूरी क्षमता निहित है। उनकी सौन्दर्य सर्जना मानव को अभिभूत कर अकर्मण्य नहीं बनाता, बल्कि मानव की चेतना में उर्जा का संचार कर नये युग की अभिलाषा को उद्दीप्त करता है। प्रसाद ने स्वयं ही सौन्दर्य को मोती के भीतर छाया जैसी तरलता कहा है। प्रसाद पर कालीदास का गहरा प्रभाव था। अतः उनकी सौन्दर्य चेतना छोटे—छोटे बिम्बों से पूरा नहीं हो सकता था, इसलिए अपने उदात्त व्यक्तित्व के अनुरूप उन्होंने हिमालय, सागर, आकाश, कैलाश, बादल आदि के विराट बिम्बों को अपनी सौन्दर्य चेतना में ढालने का कलात्मक प्रयास किया है। काव्य में वर्णित उनकी सौन्दर्य चेतना को अनुभूत कर पाठक अपनी चेतना में भी एक ऊँचाई का अनुभव करता है। 'कामायनी' के काम सर्ग में प्रसाद की अलक्ष्य सौन्दर्य के प्रति अद्भुत सौन्दर्यात्मक अनुभूति एवं अडिग आस्था पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त है:

सौन्दर्यमयी चंचल कृतियाँ, बनकर रहस्य नाच रही
मेरी आँखों को रोक वहीं, आगे बढ़ने में जाँच रही।
मैं देख रहा हूँ जो कुछ भी, वह सब क्या छाया उलझन हैं?
सुन्दरता के इस पर्दे में क्या अन्य धरा कोई धन है?[20]

उन्होंने सौन्दर्य के प्रति आकर्षण एवं सौन्दर्य को सत्य एवं शिव के रूप में देखा। नारी प्रकृति एवं मानवी सौन्दर्य को अपनी भावना से संजोकर उन्होंने कामायनी जैसे महाकाव्य का सृजन किया, जो हिन्दी साहित्य जगत में अमूल्य धरोहर के रूप में विद्यमान है। कामायनी में मानवीय सौन्दर्य, प्राकृतिक और भावसौन्दर्य के साथ—साथ भाषागत सौन्दर्य सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दी साहित्य में कामायनी अद्भुत रचना है।

सन्दर्भ सूची

1. प्रसाद जयशंकर, कामायनी (लज्जा सर्ग),भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ 110
2. मुक्तिबोध गजानन माधव, नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 32
3. वर्मा धनजंय, आधुनिक कवि विमर्श, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ.26

4. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(चिंता सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.12
5. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(चिंता सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ. 12
6. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(चिंता सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ .18
7. सिंह डा.उदयभान, कामायनी लोचन(प्रथम खंड), राधाकृष्ण, नयी दिल्ली, पृ. 63
8. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(श्रद्धा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.54
9. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(श्रद्धा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.54
10. सिंह डा.उदयभान, कामायनी लोचन(प्रथम खंड), राधाकृष्ण, नयी दिल्ली, पृ.169
11. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(श्रद्धा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.54
12. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(श्रद्धा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.54
13. प्रसाद जयशंकर, कामायनी (इडा सर्ग),भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.176
14. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(इडा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.176
15. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(आशा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.34
16. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(आशा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.48
17. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(आशा सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.37
18. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(चिंता सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.18
19. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(वासना सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.97
20. प्रसाद जयशंकर, कामायनी(काम सर्ग), भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ.74

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

बाल साहित्य और प्रकृति का संबंध : विशेष संदर्भ 'पशु-पक्षी हमारे मित्र'

कार्तिक मोहन डोगरा
शोधार्थी
महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

आज चाय की टपरी पर एक कविता सुनी। मेरे मित्र कह रहे थे एक बाल काव्य संग्रह में पढ़ी थी। जब वह कविता सुनी तब इस बात को महसूस किया कि बाल कविता असल में तुकबंदी और लय के बिना लिखी जाए तब वह व्यर्थ ही जाती है। क्योंकि इन्हीं दो मूल कारणों की वजह से बाल कविता किसी भी बालक को याद रह सकती है। आप जब बालक होंगे तब की किसी काव्य कृति को याद करें। लय और तुक दोनों उन काव्य कृत्यों में भरपूर मिलेगी। और ऐसा ही हुआ यह कविता मेरे मित्र की ज़बान से उतर कर मेरी ज़बान कब पर चढ़ गई मुझे मालूम भी न हुआ। उसी क्षण उन से वह काव्य संग्रह उधार लेकर पढ़ा। और महसूस किया कि इस काव्य संग्रह की हर कृति एक पशु या पक्षी को समर्पित है। और हम लोगों के बाल जीवन की काव्य कृत्यों में भी प्रकृति का संग सदैव से बना हुआ है। इसलिए इस लेख में हम बाल साहित्य और प्रकृति के संबंधों को समझने का प्रयास करेंगे।

विभिन्न बाल साहित्यकारों एवं आलोचकों ने बाल साहित्य को परिभाषित किया है। कुछ परिभाषों पर नीचे चर्चा करते हैं।

हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य पर रोशनी डालते हुए कहते हैं "आज के जीवन में बच्चों का जो स्वरूप है, वह किसी राजनीतिक या पिछड़ी हुई सामाजिक विचारधारा से प्रभावित है। बच्चों को जिस मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होती है, उसे बिल्कुल ही अलग कर दिया गया है। तद्युगीन समाज और वातावरण के अनुकूल बच्चों को बनाना आवश्यक तो है, किन्तु उनकी मूल प्रवृत्तियों को विकसित न होने देना, उनके प्रति अन्याय है। यदि इस परिप्रेक्ष्य में हम भारतीय बाल साहित्य को देखें तो उसमें अधिकांश ऐसा है जो बच्चों को सदियों पीछे ले जाना चाहता है। वहीं जादू भरी घाटियाँ, परी कथाएँ, पुराणों की कहानियाँ, घुमाफिराकर परम्परागत रूप में सुनाते रहते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो बच्चों की वास्तविक आवश्यकता को ध्यान में रखकर पुस्तकें लिखते हैं।"[1]

शंकर सुल्तानपुरी लिखते हैं "आज जब मानव मूल्यों का विघटन हो रहा है, नैतिक मूल्य गिर रहे हैं। स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता का बोलबाला है और भारतीय संस्कृति की गरिमा धूमिल हो रही है, ऐसे समय में बाल साहित्यकारों की भूमिका बड़ी अहम है। उन्हें ऐसे बाल साहित्य सृजन की ओर उन्मुख होना है जो क्षणिक मन बहलाव का न होकर स्थायी रूप से बच्चों के चरित्र विकास में, उनका मनोबल ऊँचा करने में प्रेरक सिद्ध हो।"[2]

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने लिखा है "आज बाल साहित्य में जिस सैद्धान्तिक आधार भूमि की बात कही जा रही है वह उसी बाल मनोविज्ञान पर अवलम्बित है जो बालक के विकास तथा बदलते हुए परिवेश में सामन्जस्य स्थापित करने में उसके लिए सहायक होता है। बाल साहित्य के शास्त्रीय विधान न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, बल्कि साहित्य रचना की दृष्टि

से भी बड़ों के साहित्य शास्त्रीय विधानों से बिल्कुल अलग हो जाते हैं। बाल अनुभूति की सरल और गेय शब्दों में छन्दबद्ध अभिव्यक्ति ही बाल गीत है। कहानियाँ सुनकर बच्चे कुछ सीखते हैं, नए-नए सपने देखते हैं। उनके सामने सारा संसार होता है, उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है और उनकी रूचि गहरी होती है।"[3]

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम भी इसके सम्बन्ध में लिखते हैं - "सच तो यह है कि बाल साहित्य का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करना तथा उसके विकास के लिए समुचित दिशा प्रदान करना होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से बाल साहित्य के लेखन एवं चुनाव के लिए आवश्यक हो जाता है कि लेखक तथा अध्यापक बालक के व्यक्तित्व के विकास की विविध अवस्थाओं में मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को पहचानें। बाल साहित्य बच्चों की दृष्टि के अनुकूल उनका मनोविज्ञान समझकर उन्हीं के स्तर पर उतरकर, उन्हीं की भाषा में उनके समझने योग्य अभिव्यक्ति के द्वारा लिखा जाना चाहिए।"[4]

बाल साहित्य की भाषा से जुड़ाव में राजेन्द्र कुमार शर्मा ने लिखा है "भाषा, भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। काव्य सृजन की प्रभावात्मकता पर भाषा का सीधा प्रभाव पड़ता है। शिशुगीतों और बाल कविताओं में तो भाषा का विशेष महत्व होता है। बाल कवियों के लिए बाल मनोविज्ञान के अनुरूप काव्य भाषा में सृजन करना, वास्तव में एक गम्भीर चुनौती है। सामान्य साहित्य की रचना तो कोई भी व्यक्ति कर सकता है, किन्तु बाल साहित्य सृजन सभी के बस की बात नहीं होती है।"[5]

डॉ. शिरोमणि सिंह श्पथश् ने लिखा है- "बाल कविता की रचना ठीक उसी तरह होनी चाहिए जिस प्रकार माँ बच्चे का पालन-पोषण करती है। उसी प्रकार बाल कविता की प्रकृति होनी चाहिए जो बाल मन में एक खिलखिलाहट और स्वतंत्र भावों का संचार करे, जो न तो किन्हीं उपदेशात्मक या नैतिक बंधनों में बांधती हो, और न ही उबाऊ हो, जो बाल कविता केवल बाल मन को रिझाने और लुभाने वाली और बिना किसी बोझ वजन के होनी चाहिए।"[6]

प्लेटो के अनुसार, "बच्चों का शिक्षण बच्चों की पौराणिक, धार्मिक, नीतिकथाओं, पवित्र गाथाओं से प्रारंभ होना चाहिए। ये कहानियाँ सरल, सुबोध कविताएँ भी हो सकती हैं।"[7]

"मारिया मोंटेसरी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के दिमाग में उस आदमी को जगाना है, जो सोया हुआ है। शिक्षा का कार्य केवल निरीक्षण करना नहीं, बच्चे को रूपांतरित करना (बदलना) है। जो शिक्षा मानव में सद्वृत्तियों (अच्छी आदतों) को जागृत नहीं करती, जो उसे प्रेय से श्रेय की ओर नहीं ले जाती, जो उसके हृदय में प्रविष्ट होकर उसे एक श्रेष्ठ जीवन-स्वप्न से नहीं भर देती, वह शिक्षा नहीं है, केवल साक्षरता है और आज ऐसे साक्षर मूर्खों की बढ़ती हुई संख्या ही जगत् की अनेक समस्याओं का कारण है।"[8]

डॉ शकुंतला कालरा कहती हैं - "साहित्य जीवन का परिष्कार और पकड़ है इस विचार चिंतन में बच्चों के विकास में बाल साहित्य और उसे रचने वाले साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और रहेगी।"[9]

"वात्सल्य की प्रवृति बाल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। यह नितान्त स्वाभाविक है कि बच्चे प्यार की भाषा समझते हैं। यही वजह है कि बाल साहित्य में वात्सल्य भाव की मात्रा सर्वाधिक रहती है। बच्चों के प्रति प्रेम और स्निग्धता दर्शाने वाला रस वात्सल्य है। बाल साहित्यों में बालकों के प्रति प्रेम तो दर्शाया ही जाता है, साथ ही साथ बच्चों को भी प्रेम प्रदर्शन, आत्मीयता का भाव रखने की प्रेरणा दी जाती है। छोटे बालकों को परिवार, समाज, जीव-जंतु तथा प्रकृति से प्रेम करना बाल साहित्य ही सिखलाता है। राष्ट्र प्रेम तथा देश भक्ति का भाव भी बाल साहित्य के माध्यम से भरा जाता है। इन माध्यमों से बाल साहित्य एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करता है।"[10]

काग कहो या कह दो कौआ/ नन्हें बच्चे कहते हौआ।/अच्छा डील न अच्छा डौल, /अच्छा रंग न अच्छा बोल।।/ गंदा खाना पीना इसका,/ बेमतलब है जीना इसका।/ गंदा संदा जो पाता,/ उठा चोंच में चेट खा जाता।।/ भादों गया कनागत आये,/ अब तो है इसके मन भाये।/ काँव काँव करतो आवेगा, /हलुआ माल पुवा पावेगा/ होता देख अपना आदर, /बुलवा लेगा सगे बिरादर।/ इससे यह शिक्षा सब लेना, /थोड़ा थोड़ा सबको देना।[11]

जब हम नरेश जी की बाल कविता पढ़ते है तब इस बात को गहरे स्तर पर महसूस कर पाते है कि वह अपनी काव्य कला का प्रयोग कर के बाल सुलभ कविता बनाते है जिसके द्वारा जब उनकी कविता को कोई पाठक पढ़ता है तब उसके मस्तिष्क पर तुरंत यह कविता अंकित हो जाती है। साथ ही वह विभिन्न पशु पक्षियों का साहरा लेते है एवं उनके द्वारा जीवन मूल्यों को बालक के भीतर रोप देते है जो उसके विकास के साथ-साथ एक बड़े मूल्यों का वृक्ष बन जाता है। यह मूल्यों समाज में पशु के साथ सदैव से चलते आए हैं जैसे हम इस बात को जानते है कि कोयल उसकी मिठास के लिए जानी जाती है या फिर कुत्ता अपनी वफादारी के लिए जाना जाता है।

नरेश जी इन सब बातों को समाज से लेकर बाल सुलभ काव्य में प्रयोग करते है। और इस से बाल साहित्य को और लोकतांत्रिक बनाते हैं। जब बालक इस प्रकार का काव्य पढ़ता है तब वह प्रकृति के निकट आ जाता है। आज के समय में जिसकी बहुत आवश्यकता है।

अगर संक्षिप्त में कहूँ तो नरेश जी का बाल साहित्य हर बाल साहित्यकार और आलोचक की परिभाषा पर खरा उतरता है। साथ ही वह इस पुस्तक के माध्यम से समकालीन दौर के बच्चों के भीतर अपने पर्यावरण को जानने की जिज्ञासा पैदा कर रहे हैं। नरेश जी ने अपने बाल साहित्य के द्वारा बाल साहित्य को लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

1. हरिकृष्ण देवसरे, हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सन् 1969, पृ. संख्या 12
2. सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास साहित्य वाणी, इलाहाबाद, सन् 1991, लेखक द्वारा लिखे गए शंकर सुल्तानपुरी के साक्षात्कार से, पृ.-14
3. हरिकृष्ण देवसरे, हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन ,आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1969, पृष्ठ-235
4. सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास-साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1991, पृ. 13-14
5. राजेन्द्र कुमार शर्मा, समकालीन हिन्दी बाल कविता फाल्गुनी प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2013, पृष्ठ 143
6. शिरोमणि सिंह, बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृ. सं. 62
7. प्रेम भार्गव, कैसे बने बालक संस्कारी और स्वस्थ-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली. 2015 पृ. 129
8. वही, पृ. 130
9. शकुंतला कालरा, हिन्दी बाल साहित्य विचार और चिंतन-नमन प्रकाश, नई दिल्ली, 2014, पृ. 09
10. https://www.apnimaati-com/2021/07/blog-post-86-html
11. डॉ नरेश के. सिहाग , पशु -पक्षी हमारे मित्र, विकास बुक कंपनी ,दिल्ली ,2023 पृष्ठ संख्या 12

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग की पुस्तक 'सिंहल द्वीप की राजकुमारी' शिक्षा और मनोरंजन का अनूठा संगम

डॉ. महावीर प्रसाद पूनियां
(शिक्षाविद्) अध्यक्ष - अखिल भारतीय साहित्य परिषद्,
राजस्थान इकाई- टिब्बी (हनुमानगढ़)
drmahaveerpoonia@yahoo.com
Contact no- 7891809345

परिचय

डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित पुस्तक "सिंहल द्वीप की राजकुमारी" न केवल मनोरंजक कथाओं का संग्रह है, बल्कि पाठकों को नैतिक शिक्षा और जीवन-मूल्यों का पाठ पढ़ाने का भी एक उत्कृष्ट प्रयास है। इस पुस्तक में शामिल कहानियां विभिन्न काल्पनिक पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से सामाजिक और व्यक्तिगत नैतिकता को उजागर करती हैं।

पुस्तक का स्वरूप और उद्देश्य

पुस्तक की कहानियां सरल और रोचक शैली में लिखी गई हैं, जो बच्चों से लेकर वयस्कों तक सभी पाठकों के लिए पठनीय हैं। पुस्तक का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है, बल्कि विभिन्न जीवन परिस्थितियों में नैतिकता, सहयोग, और संतोष जैसे गुणों को समझाने और अपनाने की प्रेरणा देना है।

मुख्य कहानियों का विश्लेषण

1. सिंहल द्वीप की राजकुमारी - पुस्तक की शीर्षक कथा "सिंहल द्वीप की राजकुमारी" एक अद्भुत कहानी है, जो साहस, निष्ठा और कर्तव्यपरायणता का संदेश देती है। राजकुमारी का संघर्ष और उसकी बुद्धिमत्ता यह सिखाती है कि जीवन में चुनौतियों का सामना धैर्य और विवेक से करना चाहिए। यह कहानी साहस, त्याग और कर्तव्यपरायणता की मिसाल प्रस्तुत करती है। राजकुमारी के माध्यम से नारी सशक्तिकरण और नेतृत्व की भावना को प्रोत्साहित किया गया है।

2. उपकार का ऋण - दूसरों की मदद करने के महत्व और कृतज्ञता की भावना को उजागर करती है। यह कहानी उपकार को लौटाने और उसे याद रखने की प्रेरणा देती है।

3. धोखेबाज गीदड़ - कहानी छल-कपट के नकारात्मक परिणामों को रेखांकित करती है।

4. चालाक लोमड़ी - यह कहानी बुद्धिमानी और समस्या-समाधान की कुशलता पर आधारित है।

5. लालच का अंत - लालच और असंतोष के दुष्परिणामों को प्रभावी ढंग से दर्शाया गया है।

6. साहसी राजकुमार - साहस और धैर्य से विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की प्रेरणा देती है।

7. संतोष का फल - जीवन में संतोष और संयम का महत्व समझाने वाली कहानी।

विशेष कथाएं

इसके अलावा, "लाल मुर्गे की चतुराई", "जादू का पिटारा", "साहसी राजकुमार", और "सराय का मालिक" जैसी कहानियां जीवन के विविध पहलुओं को उजागर करती हैं। ये कहानियां पाठकों को साहस, धैर्य और कर्तव्य की प्रेरणा देती हैं।

पुस्तक में "गड़ा हुआ धन", "आकाश-महल", और "संतोष का फल" जैसी कहानियां संतोष और मेहनत के महत्व को दर्शाती हैं।

शिक्षाप्रद पहलू

पुस्तक में शिक्षाप्रद कहानियों के माध्यम से नैतिक मूल्यों को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य किया गया है। कहानियां सरल और रोचक भाषा में हैं, जिससे बच्चे और युवा वर्ग आसानी से जुड़ सकते हैं।

लोककथाओं और जीवन मूल्यों का संगम

पुस्तक में "बैंगन राजा", "अर्जुन के वंशज", "कुदरत के खेल", और "अनूठे वस्त्र" जैसी कहानियां भारतीय लोककथाओं और परंपराओं से जुड़ी हैं। ये कहानियां मनोरंजन के साथ-साथ जीवन मूल्यों की शिक्षा देती हैं।

मातृत्व और प्रकृति की कहानियां

"माँ की ममता", "माली और बाग-बगीचा", और "हारिल पक्षी" जैसी कहानियां मातृत्व, प्रकृति, और पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती हैं।

सामाजिक संदर्भ

डॉ. नरेश सिहाग की यह कृति वर्तमान समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ नैतिकता और मूल्यों का क्षरण होता दिख रहा है। यह पुस्तक समाज में नैतिकता, सहयोग, और ईमानदारी के संदेश को पुनः स्थापित करने में सहायक हो सकती है।

विशेष शिक्षाएं

पुस्तक में "बड़ों की सीख", "सच्चा ज्ञान", और "स्वर्ग का अधिकारी" जैसी कहानियां शिक्षा और ज्ञान के महत्व को रेखांकित करती हैं।

होली, मित्रता और जीवन के अन्य रंग

"होली का दिन" और "मित्रता" जैसी कहानियां हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को सजीव बनाती हैं। वहीं, "रेशम के बाल" और "पपीहरा" जैसी कहानियां पाठकों को अद्वितीय रोमांच का अनुभव कराती हैं।

पुस्तक की विशेषताएँ

1. रोचक कथानक - प्रत्येक कहानी में सरलता और रोचकता के साथ नैतिक संदेश दिया गया है।

2. सांस्कृतिक परंपरा का संरक्षण - भारतीय लोककथाओं की शैली में लिखी गई यह पुस्तक हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिनिधित्व करती है।

3. बाल साहित्य का विकास - यह पुस्तक बाल साहित्य को नई ऊँचाई प्रदान करती है।

निष्कर्ष

"सिंहल द्वीप की राजकुमारी" न केवल एक रोचक और मनोरंजक पुस्तक है, बल्कि यह बच्चों और वयस्कों को जीवन के विभिन्न पहलुओं में नैतिकता और मूल्यबोध का संदेश देती है। यह पुस्तक भारतीय साहित्य में एक अनूठा योगदान है, जो पाठकों को मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा प्रदान करती है।

सुझाव

1. पुस्तक का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जाए।
2. विद्यालयों में इसे पूरक पाठ्य सामग्री के रूप में शामिल किया जाए।
3. इस पर आधारित नाट्य प्रस्तुतियाँ और गतिविधियाँ आयोजित की जाएँ।

संदर्भ

1. सिहाग, नरेश, सिंहल द्वीप की राजकुमारी, प्रथम संस्करण, एस.एस. पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. नैतिक शिक्षा और बाल साहित्य पर संबंधित अन्य शोध-पत्र।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

SOCIO-ECONOMIC STATUS OF AGANWADI WORKERS AND ICDS WITH SPECIAL REFERENCE TO CHAUKHUTIYA BLOCK (ALMORA DISTRICT)

Dr. Reenu Rani Mishra[1] and Mukesh Verma[2]

1. Professor, Department of Economics, M.B. Govt. PG college, Haldwani, Uttarakhand, India, Email: reenureenu311@gmail.com

2. Research Scholar, Department of Economics, M.B. Govt. PG college, Haldwani, Uttarakhand, India, Email: mukeshverma539@gmail.com

Abstract

The present study was an attempt to determine "Socio-Economic status of Aganwadi Workers and ICDS with special reference to chaukhutiya block (Almora District)".Various Indian studies were reviewed. Descriptive survey method has been used in this study. The sample consisted of 30 Aganwadi Workers from chaukhutiya block using purposive sampling method. Structured questionnaire used for the data collection. Integrated child development services (ICDS) is an Indian government welfare programme that provide food, preschool education, and primary healthcare to children under 6 years of age and their mothers. it improves the situation regarding nutrition and health of children. Many schemes run by the government & provide financial assistance to the women empowerment in the society.

Keywords: Socio-Economic Status, Aganwadi Workers, ICDS.

Introduction

Development of human resources was given high priority by Government of India after the independence and plans were initiated for overall development of Children 's of the country. Anganwadi workers provide basic health care as a part of the Indian public healthcare system that is affordable and accessible by using local population. Moreover, since most of workers are from the same village, they are trusted easily which makes it easier for them to help the people. The children in the age group 6 months to 6 years, Pregnant Women and Lactating Mothers are eligible for services from Anganwadi. The Anganwadi centres (AWCs) are part of the Integrated Child Development Services (ICDS) Scheme which is the largest programme for promotion of maternal and child health and nutrition. Integrated Child Development Services ICDS was launched on 2 October 1975 focusing on children and nursing mothers. All the services of ICDS are provided through a network of 1.4 million Anganwadi's run by approximately 1.3 million Anganwadi workers

and 1.2 million Anganwadi helpers catering to approximately 80 million children less than six years of age1.

Research Problem

Anganwadi workers have played a major role in assisting people in various states in dealing with the pandemic at the grassroot levels. their contribution is providing basic healthcare, including immunization and nutrition, to the vast rural population and in the fight against this pandemic were hailed as "unparalleled" and "commendable". At the same time, the Anganwadi workers also faced so many problems.

Anganwadi centres are the first educational institutional for children with in the age group of three to five years, apart from the educational services. Improving the nutritional and health status of children in the 0-6 age group, building a solid foundation for the child's psychological, physical, and social development. Reducing deaths, morbidity, malnutrition, and school dropout rates, coordination of policy and action between various departments to bring about child development and enhance the ability of the mother to take care of the child's normal health and nutritional needs through proper nutrition and health education. We need to appreciate and recognize these Anganwadi centres for their efficient work to protest society without considering their health. The Income of all workers and helpers is the same as usual before and after the pandemic so the government need to give more consideration to their remuneration because they are worthy of that.

Review of Literature

Thakare Meenal., et.al 2011 into their research article "Knowledge of Anganwadi workers and their Problem in urban ICDS Block". It identified various problem faced by Anganwadi workers are inadequate Honorarium, Excessive record maintenance, infrastructure related work load etc.

Parikh & Sharma (2011) conduct a study entitled "knowledge and perceptions of ICDS Anganwadi Workers with regard to the promotion of Community -based Supplementary Feeding practices in Semi -tribal ", where researchers found that Anganwadi workers had moderate's knowledge of feeding practices of children and young children. However, Anganwadi workers did not fully understand the reasons for encouraging breastfeeding for children over two years of age.

et al Chauhan. (2015) conduct a study to evaluate knowledge, practice and infrastructure availability with in the integrated child development service (ICDS) program in mandi district of Himanchal Pradesh. They found that all Anganwadi workers (AWWs) and 97 per cent of Anganwadi helper had been trained and provided satisfactory services, but did not consistently demonstrate their expertise during the evaluation. Most AWWs (98%) provide a range of services to teenagers, including iron and folic acid supplements, worming pills, informal health education and food supplementation. In addition, 85 per cent of Anganwadi Centres (AWCs) had a single kitchen, restaurant and storage room for food. The study also showed that 98% of the AWWs used LPG for cooking purposes, and 98% build permanent structures (pucca house).

Arya et al. (2018) carried out a research study on "The knowledge of Anganwadi workers of

Uttarkashi District Uttarakhand on Integrated Child Development Services (ICDSs)." The aim of the study was to access the socio– economic situation of Anganwadi workers, their knowledge of nutrition and health, and their challenges in their work. Data from 30 Anganwadi workers were

collected through a combination of questionnaires and interviewers. The study found that 50 per cent of employees were between 36 and 45 years old and nearly all (97 per cent) were married. In addition, only 33.33 per cent of Anganwadi workers (AWWs) have sufficient knowledge of the methods of monitoring child growth and determining child nutrition requirements. About 83 per cent of workers reported that they had to do extra work in addition to their main responsibilities.

John, Aparna, Nicholas Ni Sbett, Inka Barnett, Rasmi Avula, Purnima Menon. (2020), "Factor s influencing the performance of community health workers: A qualitative study of Anganwadi workers from Bihar, India" The better outcomes are achieving when improved remuneration, improved working conditions, and supportive management of Anganwadi workers (AWW), ASHA Workers and auxiliary nurse midwives.

M.ADITI and K.M ASHOK (2020), "need to revisit Anganwadi workers". In this it focuses on revisit Anganwadi workers for solving the problem which is faced by them. The problem is related to infrastructure, amenities at Anganwadi centres, over workload inadequate salary, administration of Anganwadi, and general problem.

Objectives of the study

The study mainly focuses on:

- To study schemes under ICDS for proper growth and development of children and their lactating mother.
- To analysis the services provided by Anganwadi workers to children and their mothers
- To study the problem faced by the Anganwadi workers.
- To analyse the economic and social status of Anganwadi workers.

Methodology

Descriptive survey method has been used in this study. Economic and social study of Anganwadi workers (AWWs). Both primary and secondary data have been used.

Primary Data- To gather primary data about the study, 30 Anganwadi workers from chaukhutiya blocks were field survey using structured questionnaires, interview, photos and simple statistical tools are used.

Secondary data- Secondary data are collected from various journals, annual reports and economic view, chaukhutiya tehsil, block District office, vikas bhawan or any regional office. To gather primary data about the study, 30 Anganwadi workers from chaukhutiya blocks were surveyed using structured questionnaires. simple statistical tools are used.

Area of Study

The area is selected for the present study is confirmed to Chaukhutiya block that belong to district in Almora Uttarakhand. Chaukhutiya is a town in Almora district of Uttarakhand.

Table No.-1

Chaukhutiya Population

S.N.	POPULATION	46,039
1	Males	20,036
2	Females	26,003
3	ST Population	42
4	SC Population	8,970
5	Literacy	80.71%
6	Household	10,821
7	Child(0-6yrs)	5,939

Total population of Chaukhutiya block is 46,039 with male population of 20,036 and female population of 26,003. There are 10,821 households in Chaukhutiya block, Almora district and total Literacy rate is 80.71%. ST population is 42 only and SC population is 8970. the children of 0-6 Years is 5939.

Intigrated Child Development Services (ICDS) Scheme-

ICDS is the largest and most diverse programme in India. This is a centrally sponsored scheme under the Ministry of Women and Child Development. On October 2, 1975, on the 106th birthday of our father of the nation, Mahatma Gandhi the project has started. It is an unparalleled program designed for child care and development. the program covers the development of children under the age of six, pregnant and lactating mothers, and adolescent girls in the most disadvantaged rural, urban and tribal areas.

The ICDS team includes Anganwadi Workers, Anganwadi Helpers, Supervisor, Child Development Project Officers (CDPOs) and District Programme Officers (DPO). Moreover, the medical officers, Auxiliary Nurse Midwives (ANMs) Accredited Social Health Activists (ASHAs) collaborate with ICDS functionaries to achieve convergence of different services.

ICDS in Uttarakhand with the objective of improvement in health and nutrition of children up to the age of 6 years, to reduce death rate and the tendency of dropping out school and to bring improvement in the health of mothers, this program has been initiated in India from 02 October, 1975. In the year 197879, child development projects were started in three development blocks of

Uttarakhand Chakrata, Kirtinagar and Dharchula. At present, 97 rural projects, 8 urban projects, total 105 child development projects are being.

Anganwadi Centres

Anganwadi's are centres for integrating services for women and children. On tenth five-year plan ICDS were linked to Anganwadi centres established mainly in rural areas and staffed with frontline workers. As part of the ICDS Anganwadi Scheme, yards are used in villages and slums to provide services to women and children. In Anganwadi's, women, mothers, and other leading activists meet together, share ideas, and plan activities to advance women's and children's rights. The Anganwadi centres are mainly managed by the Anganwadi worker (AWW) with the assistance of a helper (AWH) and implemented the ICDS scheme in coordination with the functionaries of the health, education, rural development and other departments.

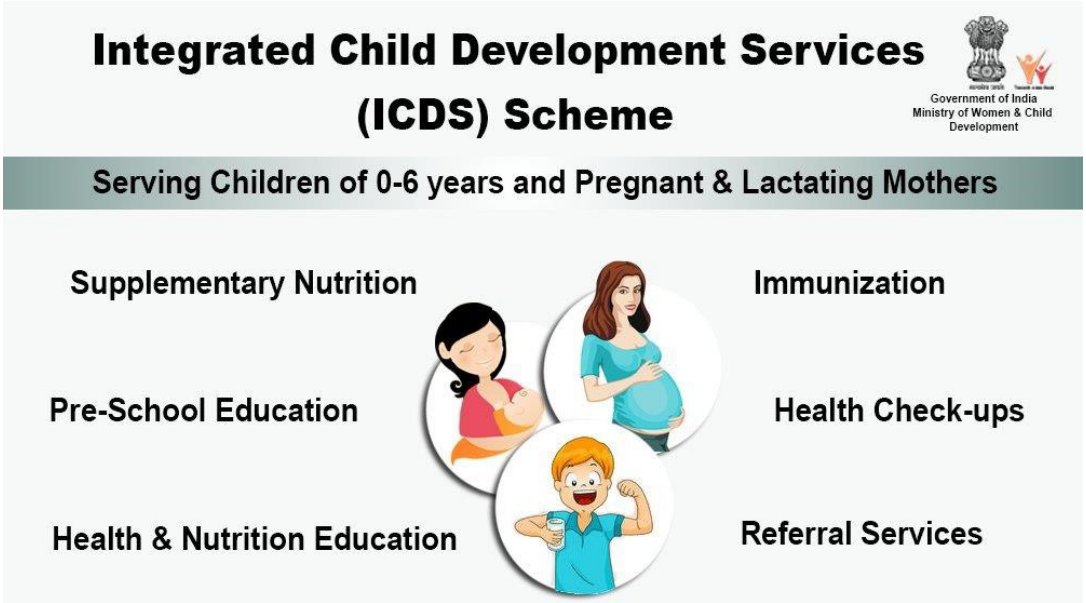

Source: Ministry of Women and Child Development

Role and Responsibilities of AWW and AWH

According to Ministry of Women and Child Development, Government of India, the following are the basic roles and responsibilities listed for the Anganwadi worker;

- To elicit community support and participation in running the programme.
- To weigh each child every 'month, record the weigh graphically on the growth card, use referral card for referring cases of mothers/ children to the sub-centres /PHC etc ., and maintain child cards for children below 6 years and produce these cards before visiting

medical and para-medical personnel.

- To carry out a quick survey of all the families, especially mothers and children in those families in their respective area of work once in a year.
- To organise non-formal pre-school activities in the Anganwadi of children in the age group 3-6 years of age and to help in designing and making of toys and play equipment of indigenous origin for use in Anganwadi.
- To organise supplementary nutrition feeding for children (0-6 years) and expectant and nursing mothers by planning the menu based on locally available food and local recipes.
- [∗ Φιλε χονταινσ ινϖαλιδ δατα | Ιν–λινε.ϑΠΓ ∗]To make home visits for educating parents to enable mothers to plan an effective role in the child's growth and development with special emphasis on new born child.

Role and responsibilities of Anganwadi Helpers-

- To cook and serve the food to children and marchers.
- To clean the Anganwadi premises daily and fetching water.
- Cleanliness of small children
- To bring small children collecting from the village to the Anganwadi.
- For better governance and effective delivery of these services, ICDS employs Anganwadi centres as a platform.

Policies run in Chaukhutiya Block

There are 135 Anganwadi centres in Chaukhutiya block. in this, 175 villages under Chaukhutiya block are divided into 7 nyaya Panchayats, three main policies are run by the Government for the welfare of children and empowerment of women. there are three main policies are:

1. Gaura Devi Kanya Dhan Yojana:

Gaura Devi Kanya Dhan Yojana was started by the Uttarakhand government in 2017. The main objective if starting this scheme is to empower the girls of the state by providing financial assistance. Under this scheme, all those girls whose family annual income is Rs 72000 or less can apply. For families falling in reserve income to avail the poverty line the annual income to avail the benefit of this scheme has been fixed at Rs 15976. The government will provide financial assistance of Rs 11000 to small girls and when they pass 12th class, they will be provided financial assistance of Rs 52000. A total of 2685 schools are registered under this scheme. This year 32870 applications under this scheme have been receive till now about 50000 girls have been provided the benefit of this scheme. The budget of this scheme in 2021 is Rs 89 crore. were determined.

2. Pradhan Mantri Matru Vadna Yojana (PMMVY)-

Pradhan Mantri Matru Vadana Yojana was started by Prime Minister Narendra Modi in the year 2017. Through this scheme, financial assistance is provided to pregnant and lactating women. Under the Pradhan Mantri Matru Vadana Yojana, financial assistance of Rs.11,000 is given in three instalments from the conception of the women till the birth of the child, which is sent to the women's bank account through DBT. So that woman can nuture their children properly. Along with financial

assistance, all pregnant women are also provided with free medicines and facilities for pre and post pregnancy medical check-up etc. To avail the benefits of this scheme, women can apply through both online and offline process. This scheme helps pregnant women in providing adequate nutrition to the mother and child by providing financial assistance.

3. Mukhyamantri Mahila Lakshmi kit Yojana

- Uttarakhand Chief Minister Mahalaxmi Kit Scheme was started by the Uttarakhand Government in 2021.
- This scheme has been issued to take forward the 'Beti Bachao Beti Padhao' campaign.
- The main objective of starting the schemes is to save the women of the state and their babies from malnutrition.
- Women empowerment and Child Development Department of Uttarakhand Government is the nodal department of this scheme.
- Under the Uttarakhand Chief Minister Mahalaxmi Kit Scheme, Mahalaxmi Kit will be provided to the beneficiary women after the birth of the child.
- It is mandatory to apply for Mukhyamantri Mahalaxmi kit yojana within 6 months from the birth of the child.
- Only women whose family income is less than Rs 6,000/- per month are eligible to get Mahalaxmi kit.

Conclusion

Integrated child development services (ICDS) is an Indian government welfare programme that provide food, preschool education, and primary healthcare to children under 6 years of age and their mothers. it improves the situation regarding nutrition and health of children. Many schemes run by the government & provide financial assistance to the women empowerment in the society. Schemes under ICDS are: Gaura Devi Kanya Dhan Yojana, Pradhan Mantri Matru Vadana Yojana (PMMVY), Mukhya Mantri mahalakshmi Kit Yojana. But Anganwadi centres need to be strengthened structure and Anganwadi workers need to be given more salary and services regarding health, insurance and providing educational and training programme in which so, that they can be motivated and take interest in all activities of the project.

Reference

- Parikh & Sharma (2011) conduct a study entitled "knowledge and perceptions of ICDS Anganwadi Workers with regard to the promotion of Community -based Supplementary Feeding practices in Semi -tribal".
- et al Chauhan. (2015) conduct a study to evaluate knowledge, practice and infrastructure availability with in the integrated child development service (ICDS) program in mandi district of Himanchal Pradesh".
- Arya et al. (2018) carried out a research study on "The knowledge of Anganwadi workers of Uttarkashi District Uttarakhand on Integrated Child Development Services

- John, Aparna, Nicholas Ni sbett, Inka Barnett, Rasmi Avula, Purnima Menon. (2020), "Factor s influencing the performance of community health workers: A qualitative study of Anganwadi Woker s from Bihar, India"
- (ICDSs)." M.ADITI and K.M ASHOK (2020), "need to revisit Anganwadi workers".
- The department of women empowerment and child development.
- Juyal RK. Gupta J P, Manchand UK, A study of the functioning of Anganwadi workers of Integrated Child Development Scheme.
- Thakare Meenal., et.al 2011 into their research article "Knowledge of Anganwadi workers their Problem in urban ICDS Block".

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Gender Bias in Haryana: Policies and Grassroots Realities

Santosh Kumar
Research Scholar
Department of Geography
Baba Mastnath University, Rohtak

Abstract

Gender bias remains a deeply entrenched issue in Haryana, a state known for its patriarchal social structure and historically low sex ratio. This paper examines the socio-cultural roots of gender inequality in Haryana and its implications on women's education, health, employment, and overall empowerment. Despite being a hub of economic and agricultural growth, Haryana has faced criticism for discriminatory practices like female foeticide, dowry, and honor killings, which have marginalized women across generations.

The paper also analyzes the impact of various government policies and initiatives, including Beti Bachao Beti Padhao, Ladli Scheme, and 50% reservation for women in Panchayati Raj Institutions, in addressing these challenges. While these interventions have led to improvements in indicators like the sex ratio and female literacy rates, significant barriers remain, such as societal resistance, policy implementation gaps, and widespread gender-based violence.

Keywords: Government Policies, Government Schemes.

Introduction and study area

Haryana, a state in northern India, is both celebrated and criticized for its socio-economic dynamics. While it is known for its agricultural prosperity, industrial development, and contributions to India's sporting achievements, Haryana also struggles with deeply entrenched gender inequality. Over the years, the state has faced severe criticism for its skewed sex ratio, patriarchal norms, and regressive practices like female foeticide, dowry, honor killings, and child marriage.

Historically, Haryana's society has placed a higher value on male children due to their perceived role as breadwinners and protectors of family honor. This has led to systemic discrimination against women, reflected in poor access to education, healthcare, and employment opportunities. Despite increasing awareness and government interventions, gender bias continues to shape the lives of women and girls in Haryana, making it a critical case for studying the intersection of cultural practices and policy measures.

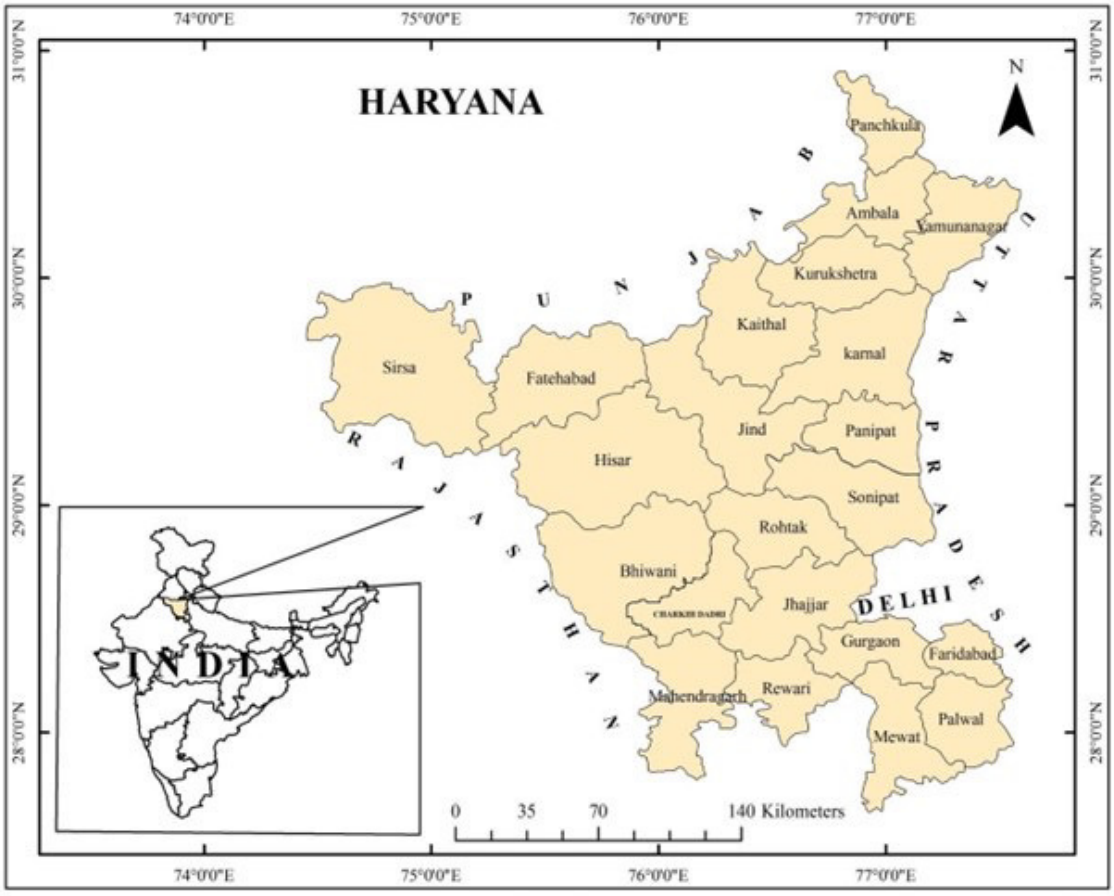

Objectives of the Paper

This research paper aims to:

1. Explore the socio-cultural factors that contribute to gender bias in Haryana.
2. Analyze the impact of this bias on women's lives in areas such as education, healthcare, and employment.
3. Evaluate the effectiveness of government policies in reducing gender inequality.
4. Recommend strategies for addressing the barriers to gender equity in Haryana.

Data Collection and Research Methodology

Data from official sources, including Census Reports, the National Family Health Survey (NFHS), government data, and independent studies, have been used to analyze gender bias in Haryana. Both quantitative and qualitative research methodologies are used in this work. This has given the study a solid factual base.

Significance of the Study

A serious problem that affects both individual rights and the advancement of society is gender bias. Haryana is a microcosm of India's larger struggles against gender inequality, especially in areas where patriarchal practices are strongly embedded. This study is important because it looks at Haryana's progress in tackling gender inequality, providing information on how well-functioning present policies are and pointing out areas that require improvement.

Historical Overview

Haryana's patriarchal societal structure is reflected in the region's long history and cultural foundations of gender bias. Male offspring were traditionally highly valued in Haryana's agrarian economy since they were viewed as property inheritors and contributors to the family's financial security. However, because they were excluded from inheriting property and dowry customs, daughters were frequently viewed as a financial burden. Discrimination against women has been sustained by these social standards, which have resulted in behaviors like female foeticide and girl child maltreatment.

Historically, Haryana has witnessed a significant imbalance in gender roles. Women were largely confined to domestic responsibilities, while men dominated public and economic spheres. This exclusion has reinforced the cycle of gender inequality, marginalizing women from educational, economic, and political opportunities.

Key Indicators of Gender Bias

1 Skewed Sex Ratio and Female Foeticide

Haryana has consistently recorded one of the lowest sex ratios in India. This imbalance is driven by son preference and the widespread availability of sex-selective abortion techniques.

Sex Ratio Data:

- 2001 Census: 861 females per 1,000 males.
- 2011 Census: 879 females per 1,000 males.
- Despite slight improvement in recent years due to government schemes like Beti Bachao Beti Padhao, the sex ratio remains a pressing issue.

2 Limited Access to Education

Although educational opportunities for girls have improved, gender disparities persist, especially in rural areas.

- Higher dropout rates among girls are often attributed to societal pressures, child marriage, lack of safe transportation, and inadequate infrastructure (e.g., toilets in schools).
- Female literacy rate (2011 Census): 66.8%.
- Male literacy rate (2011 Census): 85.4%.

3 Economic Participation

Women's participation in the workforce is significantly lower than that of men due to societal restrictions, lack of vocational training, and discrimination in hiring.

Labor Force Participation Rate (2022):

- Male: 55.5%.
- Female: 18.6%.

4 Gender-Based Violence

Haryana reports a high incidence of gender-based violence, including honor killings, dowry-related harassment, and domestic violence.

- National Crime Records Bureau (NCRB 2022): Haryana ranks among the top states for crimes against women.

Social Practices Perpetuating Gender Bias

- Son Preference: A deeply rooted cultural norm that values sons over daughters for their role in continuing the family lineage and contributing economically.
- Dowry System: The financial burden of dowry reinforces the perception of daughters as liabilities.
- Honor Killings: Strict societal control over women's choices, particularly in marriage, leads to violence and killings in the name of family honor.
- Patriarchal Mindset: Women's autonomy is often suppressed, limiting their ability to make decisions about their education, marriage, and employment.

Case Studies or Examples

1. Khap Panchayats: These traditional village councils often dictate regressive rules that disproportionately affect women, such as opposing inter-caste marriages and punishing women for alleged dishonor to the family.
2. High-Profile Honor Killing Cases: Incidents such as the Manoj-Babli case in 2007 highlight the extreme lengths to which families go to uphold patriarchal norms.

Cultural Representation of Women

Haryana's folklore and traditions often glorify women's roles as dutiful wives and mothers, reinforcing gender stereotypes. Although the state is home to notable women achievers in sports and politics, such examples are exceptions rather than norms in a society still dominated by male privilege.

Government Policies and Initiatives

policies targeting gender equality, such as:

1. Beti Bachao Beti Padhao (BBBP): Analyzed for its role in improving the sex ratio and female education.
2. Haryana Kanya Kosh: Support for the girl child.
3. Ladli Scheme: Financial incentives for families with girl children.
4. Sukanya Samriddhi Yojana: For female child education and marriage.
5. Women Reservation in Panchayati Raj Institutions: Strengthening women in governance.

Challenges in Policy Implementation

- Deep-rooted patriarchal mindsets.
- Insufficient outreach or awareness about government schemes.
- Corruption or inefficiencies in implementation.
- Rural-urban divide in policy effectiveness.

Grassroots Efforts and Non-Governmental Role

- Programs promoting girls' education.
- Campaigns against female foeticide and honor killings.

Impact of Government Schemes

Analysis of Outcomes of Key Programs like Beti Bachao Beti Padhao (BBBP):

Beti Bachao Beti Padhao (BBBP) is one of India's flagship programs launched in 2015 to address gender imbalance and promote the welfare of girls.

Increase in Enrollment:

- Female school enrollment rates rose by 6% between 2014-2021.
- Health Outcomes:
- Infant mortality rate (IMR) for girls decreased from 41 per 1,000 live births in 2014 to 36 in 2021.
- Despite positive outcomes, gaps remain in awareness and outreach in rural areas.

Representation in Governance

Women in Panchayati Raj Institutions:

- 50% reservation for women has increased their participation in local governance.
- As of 2023, 42% of Haryana's Panchayat seats are occupied by women. However, tokenism and male dominance in decision-making persist.

Recommendations

Policy reforms and new approaches are suggested such as:

- Expanding access to education and vocational training for women.
- Strict enforcement of anti-discrimination and anti-dowry laws.
- Gender sensitization programmes at the community level.
- Addressing the digital gender divide to empower women through technology.

Conclusion

Patriarchal customs and deeply ingrained gender biases have influenced Haryana's sociocultural fabric, long marginalizing women in many spheres of life, including political involvement, work, health, and education. Systemic inequality still exists, but through grassroots initiatives and government involvement, there has been noticeable progress in resolving these problems. Measurable gains in the sex ratio, female school enrollment, and political representation have been demonstrated by

initiatives like Beti Bachao Beti Padhao, Ladli Scheme, and Women's Reservation in Panchayati Raj Institutions.

Even with these developments, there are still many obstacles to overcome. The full potential of these programs is still being hampered by societal resistance, ignorance, and policy implementation flaws. True gender equality is still hampered by crimes against women, income disparities, and cultural customs like dowries and honor killings. These problems are made worse by the rural-urban divide, which makes rural women especially vulnerable.

Haryana's gender bias needs to be addressed in a number of ways:

1. Strengthening enforcement mechanisms for laws protecting women.
2. Promoting gender sensitization programs at both community and institutional levels.
3. Expanding access to education, healthcare, and vocational training for girls and women.
4. Encouraging community-driven initiatives to challenge patriarchal norms and empower women.

In the end, Haryana has a lengthy but attainable path to gender parity. To eliminate ingrained prejudices and promote a society in which men and women can equally engage in the social, economic, and political advancement of the state, persistent efforts by the government, non-governmental organizations, and the community are necessary. India and other areas facing comparable difficulties may learn a lot from Haryana's path toward gender equality, which emphasizes the necessity of constant work and lobbying to build a more equitable and inclusive society.

References

1. Chowdhry, P. (1994). The Veiled Women: Shifting Gender Equations in Rural Haryana.
2. National Crime Records Bureau (NCRB) Annual Reports (Various Years).
3. Center for Social Research (CSR). Gender Imbalance and its Implications in Haryana: A Study (2011).
4. Sangwan, S. (2013). Education of women in Haryana: Past and present. International Journal of Social Sciences.
5. India Today (2017). "Haryana fights skewed sex ratio with Beti Bachao Beti Padhao scheme."
6. The Hindu (2020). "Haryana's Khaps: Guardians of Tradition or Drivers of Patriarchy?"
7. Jaglan, M. S. & Kaur, M. (2018). Declining child sex ratio in Haryana: Causes and consequences. Research Journal of Social Sciences.
8. Khatkar, R. (2021). Gender-based violence in Haryana: Analyzing the role of khaps and state policy. Indian Journal of Gender Studies.
9. Census of India (2011, 2021). Gender Statistics for Haryana.
10. National Family Health Survey (NFHS-5, 2019-21).

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

हिन्दी काव्य में रामकथा

डॉ. अंजना शर्मा
सह आचार्य, हिन्दी विभाग
महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर
ईमेल – anjanasharma371@gmail.com
मोबाइल -9414628142

राम का चरित्र इतना व्यापक है कि विश्व की लगभग समस्त भाषाओं में इस पर लेखनी चलाई गयी है। हिन्दू धर्म में राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं कृष्ण को लीलाधारी रूप में जनसामान्य ने स्वीकार किया है। राम रामकथा का मूल स्रोत आदिकाव्य रामायण को माना जाता है, इसलिए वाल्मीकि को आदिकवि तथा रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। वाल्मीकि से पूर्व लिखित रूप में रामकथा के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। वाल्मीकि ने राम को ईश्वर के रूप में चित्रित किया और रामकथा का सूत्रपात किया। बौद्ध साहित्य में राम को बोधिसत्व मानकर अपने जातक साहित्य में रामकथा को स्थान दिया। जिनमें दशरथ जातक, अनाकम जातक तथा दशरथ कथानम नाम से तीन जातक उपलब्ध होते है, जिसमें दशरथ जातक सबसे अधिक प्रसिद्ध है। जैन कवियों ने रामकथा को नए कलेवर में प्रस्तुत किया। आदिकाल में जैन कवि स्वयंभू ने पउमचरिउ ग्रंथ में रामकथा का उल्लेख किया है। राम का एक पर्याय पद्म भी है। अतः पउमचरिउ को पद्म चरित्र भी कहा जाता है। यह काव्य पांच काण्ड और नब्बे संधियों में विभाजित है। इसके काण्डों के नाम क्रमशः विद्याधरकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुंदरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तराखण्ड हैं। रामकथा के अंत में कवि ने राम को मुनीन्द्र से उपदेश ग्रहण कर निर्वाण प्राप्त करते दिखाया गया है। ऐसा करके कवि ने जैन धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करनी चाही है। इस महाकाव्य में स्वयंभू ने राम को जैन धर्म की दीक्षा लेते हुए दिखाया है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने इस काव्य के आधार पर स्वयंभू को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। पुष्पदन्त ने महापुराण में तिरेसठ महापुरुषों का सुन्दर चित्रण किया है, इन महापुरुषों में राम का चित्रण करते हुए राम कथा का वर्णन किया गया है—"महापुराण में अनेक घटनाएँ एवं चरित्र हैं—कवि ने 63 महापुरुषों की जीवन घटनाओं को वर्णन का विषय बनाया है। प्रसंगवश इसमें रामकथा को भी स्थान मिला है। धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी इसके काव्यत्व में किसी प्रकार की कमी नहीं है।"[1] चंदरबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ में मंगलाचरण में विष्णु के दस अवतारों के अन्तर्गत रामकथा का संक्षेप में वर्णन हुआ है।

हिन्दी में रामभक्ति काव्यों का वास्तविक सूत्रपात भक्तिकाल में हुआ। यद्यपि आदिकाल में राम भक्ति से सम्बन्धित अंश मिलते है तथापि इसका विस्तृत और विधिवत प्रारम्भ रामानुजाचार्य तथा रामानंद से हुआ। मध्यकाल में रामभक्ति से सम्बन्धित दो संप्रदायों का उल्लेख मिलता है। जिसमें श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य को माना जाता है। इन्हें शेषनाग अथवा लक्ष्मण का अवतार भी माना जाता है। दूसरा सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्तक मध्वाचार्य है, इनका सिद्धांत है द्वैतवाद है। वास्तविक रूप में रामभक्ति काव्य धारा का प्रारम्भ रामानंद से माना जाता है। ये रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इन्होंने सर्वप्रथम रामभक्ति को जनसाधारण के लिए सुगम बनाया। उस समय का धर्म के क्षेत्र

में सर्वाधिक विवादास्पद विषय सगुण एवं निर्गुण का समन्वय स्थापित करके अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामानंद को इसी कारण आकाश धर्मा गुरु कहा है। रामानंद की रचनाओं में रामरक्षा स्त्रोत, रामार्चन पद्धति, वैष्णव मताब्ज भास्कर एवं हनुमान जी की आरती विशेष उल्लेखनीय है। बाद में रामानंद सम्प्रदाय की प्रधानपीठ गलताजी जयपुर में उनके शिष्य कृष्णदास पयहारी ने स्थापित की। इसे उत्तरी तोताद्रि भी कहा जाता है। इसी संप्रदाय की एक शाखा तपसी शाखा है। गुरु ग्रंथ साहिब में इनके दोहे पद मिले हैं।

अग्रदास स्वयं को अग्रअली (जानकी की सखी) मानकर काव्य रचना करते थे। ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य और नाभादास के गुरु थे। राम काव्य परम्परा में रसिक भावना का समावेश इन्होंने ही किया। इनकी प्रमुख रचनाएँ रामभजन मंजरी, उपासना बावनी, ध्यान मंजरी अष्टयाम, हितोपदेश भाषा है। विष्णु दास की रामायण कथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया राम काव्य ग्रन्थ है। कवि ईश्वरदास ने भरत मिलाप और अंगद पैज नामक काव्य लिखकर राम कथा लिखने में अपना योगदान दिया। भरत मिलाप में राम और भरत का निस्वार्थ प्रेम वर्णित है, वहीं अंगद पैज में रावण और अंगद का मनोहारी संवाद वर्णित है। नाभादास अग्रदास जी के शिष्य थे। ये तुलसी जी के बहुत बाद तक जीवित रहे। इनकी तीन रचनाएं उपलब्ध होती है रामाष्टयाम, भक्तमाल एवं रामचरित संग्रह। ये तुलसीदासजी के समकालीन थे इनका असली नाम नारायणदास था। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना भक्तमाल है, जिसमें दो सौ कवियों का वर्णन है। केशवदास ने रामचंद्रिका लिखकर रामभक्ति शाखा में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। यधपि वे रचनाकाल की दृष्टि से भक्तिकाल में माने जाते हैं, तथापि रचना प्रवृत्ति के अनुसार रीतिकाल के कवि माने जाते हैं। रामचंद्रिका कवित्व का सर्वोत्तम प्रतिमान स्थापित करता है तथा कवित्व की दृष्टि से कवि को विद्वज्जनों में यश भी दिलाता है, किंतु यह काव्य भाषा की दुरुहता के कारण आमजन की पहुँच से बहुत दूर हो जाता है। रामचंद्रिका के संवाद हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है– "रामचंद्रिका में केशव को सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है संवादों में। इन संवादों में पात्रो के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी सुंदर है (जैसे लक्ष्मण, राम, परशुराम संवाद तथा लवकुश के प्रसंग के संवाद) तथा वाक् पटुता और राजनीति के दांव पेंच का आभास भी प्रभावपूर्ण है। उनका रावण अंगद संवाद तुलसी के संवाद से कहीं अधिक उपयुक्त और सुंदर है।"[2] डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना रामचंद्रिका में केशव की संवाद योजना में पात्रों की प्रत्युत्पन्नमति को महत्वपूर्ण मानते हैं–"केशव के संवादों में सर्वत्र प्रत्युत्पन्नमति के दर्शन होते हैं, क्योंकि केशव के सभी पात्र बातों में से बात निकाल कर तुरन्त उत्तर देते हुए अपनी प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देते हैं। वे प्राय ऐसा उत्तर देते हैं, जिससे प्रश्नकर्ता भी हक्का बक्का सा रह जाता है।"[3] रामचंद्रिका की भाषा बुंदेलखण्डी मिश्रित ब्रज है। छंदों की अधिकता के कारण रामचंद्रिका को छंदों का अजायबघर कहा जाता है। आलंकारिक चमत्कार की प्रवृति केशव की रचना को विकृत और अरुचिकर बनाते हैं। काव्य के मार्मिक पक्षों पर उनकी दृष्टि ही नहीं थी। इनके काव्य की कठिनता के कारण आचार्य शुक्ल ने इन्हें कठिन काव्य का प्रेत कहा है। केशव के विषय में शुक्ल लिखते हैं– "केशव को कवि हृदय नहीं मिला था उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिये।"[4] इस कारण केशव की रामकथा जन जन के हृदय में अपना स्थान नहीं बना सकी।

महाकवि तुलसीदास ने रामकथा को आम जन तक पहुंचाकर उसे विस्तार दिया। वे राम भक्ति धारा के सबसे बड़े एवं प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने सभी दृष्टियों में रामकाव्य को हिन्दी साहित्य के शिखर तक पहुंचाया है, इसलिए उन्हें राम भक्ति काव्य परंपरा का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जाता है। डॉ.संजय कुमार शर्मा ने रामचरितमानस के महत्त्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"रामचरितमानस मानव जीवनोपयोगी मूल्य मणियों की खान है। जिनको प्राप्त कर एवं अपनाकर विश्व मानव अपने को अधिक सुखी तथा संतुष्ट बना सकता है और विश्व सभ्यता अधिक आदर्श, उन्नत तथा स्थायी हो सकती है। मानस में मानव की आचार संहिता का सम्यक दर्शन होता है। तुलसी ने लोक आचरण में नर नारायण दोनों का समन्वय किया है। तुलसी के राम मानवीय संवेदना के प्रतीक हैं, लोकप्रिय लोक नायक हैं। प्रजावत्सल, भक्तवत्सल है। सखाओं बंधुओं के बंधु सहचर हैं। तुलसी ने मानव जीवन का जो आदर्श जगत के सम्मुख रखा है, वह कोरी कल्पना या चिंतन मनन भर की वस्तु नहीं, जीवन में उतारने की चीज़ है। व्यवहार में ढालने की चीज़ है, आचार में अपनाने की चीज़ है।"[5] तुलसीदास जी ने

रामचरितमानस को सात कांडों में लिखकर राम के संपूर्ण जीवन को समेटने का प्रयास किया है। रामचरित्तमानस के अतिरिक्त विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली, रामलला नहछू, कृष्ण गीतावली, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञाप्रश्नावली, बरवै रामायण, पार्वती मंगल और जानकीमंगल ग्रंथों की रचना की। तुलसी ने राम के जिस स्वरूप की कल्पना की है वह शक्ति, शील और सौंदर्य के भंडार है। इनके राम लोक रक्षक हैं। जब जब संसार में धर्म की हानि होती है और असुरों का अत्याचार बढ़ जाता है, तब वे मानव रूप धरकर भक्तों का कष्ट हरने के लिए पृथ्वी पर आते हैं।

"जब जब होई धर्म कै हानि, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी
करहीं अनीति जाई नहीं बरनी,सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी
तब तब धरि प्रभु मनुज शरीरा,हरहीं सकल सज्जन भव पीरा।"[6]

तुलसी राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति भावना प्रदर्शित करते हैं। वे स्वयं को सेवक तथा राम को अपना स्वामी मानते हैं। तुलसी राम काव्य के माध्यम से समाज को नैतिक मूल्यों की शिक्षा देते हैं। समन्वय की भावना और रामराज्य की कल्पना उनके काव्य को विराट स्वरुप प्रदान करती है। डॉ.सुशील कुमार पांडेय ने तुलसी की प्रासंगिकता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– "संभव है कि संसार के किसी कोने के कुछ लोग वाल्मीकि और तुलसी को महत्त्व न दे तथा यह भी संभव है कि वे राम को परम ब्रह्म मानने को तैयार न हो, परन्तु रामराज्य की अवधारणाओं के कारण उसकी प्रासंगिकता से किसी को भी असहमति हो, यह असंभव है।"[7] तुलसी ने रामचरित मानस की रचना जनभाषा अवधि में की है। जिससे यह ग्रंथ देश के घर घर में पहुँच गया है। रामकाव्य में तुलसी ने सभी रसों का उपयोग किया है, जिससे पाठक नवरसों का आनंद प्राप्त करता है। तुलसीदास काव्य मर्मज्ञ थे। उन्होंने काव्य शास्त्र के नियमों में बंधी हुई छंद योजना प्रस्तुत की है। दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया आदि छंदों का रामचरितमानस में सफल उपयोग किया है। रामचरितमानस राम भक्ति काव्य की सबसे प्रौढ़ रचना मानी जाती है। इसमें तुलसी की काव्य प्रतिभा अद्भुत दिखाई देती है–"तुलसी का साहित्य वास्तव में हमारी संस्कृति का 'रसायन' है। समाज के दीन, पीड़ित, दलित, नीच, पतित, अधम, अछूत, अस्पृश्य लोगों के प्रति राम की जैसी 'उदार दृष्टि' है, वह हरिजन उद्धारको, शोषित प्रेमियों, पिछड़े वर्ग के रहनुमाओं, समाज सुधारकों के लिए प्रेरणाप्रद और पथ प्रदर्शक है।"[8]

भक्तिकाल के अन्य राम भक्त कवियों में प्राणचंद चौहान, माधवदास, हृदयराम, लालदास एवं नरहरि बापट के नाम लिए जा सकते हैं। प्राणचंद चौहान ने रामायण महानाटक की रचना की। यह काव्य, नाटक न होकर संवादात्मक प्रबंधकाव्य है। माधवदास ने रामरासो एवं अध्यात्म रामायण नामक काव्यों की सृष्टि की है, जबकि हृदयराम ने हनुमन्नाटक नामक काव्य की रचना की है। नरहरि बापट ने पौरुषेय रामायण की रचना की। इसका मुख्य आधार वाल्मिकी रामायण ही है। लाल दास ने अवधविलास नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें राम जन्म से लेकर उनके वन गमन तक की कथा है। नंददास प्रारम्भ में राम भक्त कवि थे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व वे राम एवं हनुमान को लेकर काव्य रचना करते थे। इनके पदों में तीन चार पद ही रामकथा से सम्बन्धित मिलते हैं। कृष्ण भक्त कवि सूरदास ने सूरसागर के नवम स्कंध में रामकथा के मार्मिक प्रसंगों पर सुंदर पद रचना की है। सूर का उद्देश्य सम्पूर्ण रामकथा न लिखकर, उसके मार्मिक स्थलों को अभिव्यक्त करना था।

रीतिकालीन कवि सेनापति के कवित्त रत्नाकर काव्य में राम कथा का वर्णन मिलता है। सेनापति प्रकृति चित्रण के सिद्धहस्त कवि माने जाते हैं, उनके काव्य में रामचरित्र वर्णन भी अद्भुत है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राम काव्यों में रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिंतामणि, राय देवीप्रसाद पूर्ण का राम रावण विरोध, मैथिलीशरण गुप्त का साकेत एवं पंचवटी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध का वैदेही वनवास, बालकृष्ण शर्मा नवीन का उर्मिला, निराला की राम की शक्तिपूजा, नरेश मेहता कृत संशय की एक रात और शबरी नामक काव्य राम कथा को लेकर लिखे गये है।

आधुनिक कवियों ने राम कथा को तर्क के धरातल पर रखते हुए नवीन दृष्टि से देखा है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कवि मैथिलीशरण गुप्त की राम कथा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "पौराणिक अतिप्राकृत तत्वों (उदाहरण के लिए बंदर भालुओं का राम के लिए सहायक होना) का निरसन करते हुए कवि राम के वृत को आधुनिक तार्किक धरातल पर अवतरित करता है। राम उसके निज के लिए परब्रह्म रूप है, यह उसकी अपनी आस्था की बात है। तर्क और आस्था का यों समन्वय आधुनिक

संवेदना की एक विशेष पहचान कही जा सकती है।"[9]

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर अर्वाचीन हिन्दी कवियों ने श्रीराम को परम ब्रह्म के रूप में चित्रित कर उनके प्रति पूर्ण आस्था प्रकट की है। श्रीराम का चरित्र सिंधु की भाँति अपार, अगाध और अनन्त है। श्रीराम का अवतार समाज में मानवीय जीवन का आदर्श स्थापित करता है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श मित्र और आदर्श संघटक है। वे सामाजिक समरसता के आदर्श सेतु है। इस कारण वे युगो युगो से भारतीय समाज की एकता, अखण्डता और संस्कृति के सर्वोच्च प्रतिमान बने हुए हैं। राम न केवल धार्मिक दृष्टि से अपितु अपने महान आदर्शों और चरित्र से लोकनायक बनकर विश्व मानव को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं। वर्तमान समय में राम से बढ़कर समरसता का कोई दूसरा उदाहरण मिलना असंभव है। इसलिए हिन्दी कवियों ने आदिकाल से आधुनिक काल तक राम कथा को अपने काव्य का विषय बनाया है।

निवास – 473, कृष्णा नगर, भरतपुर (राजस्थान)

सन्दर्भ

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, संस्करण - 2004 पृष्ठ – 59
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्याम प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2005, पृष्ठ – 155
3. डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ – 254
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्याम प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2005, पृष्ठ – 153
5. डॉ. संजय कुमार शर्मा, भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण- 2008, पृष्ठ – 94
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, (1.1.121), गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण- सं.2067, पृष्ठ – 117
7. डॉ. सुशील कुमार पांडेय, रामचरितमानस में सामाजिक जीवन, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2020, पृष्ठ – 159
8. डॉ. संजय कुमार शर्मा, भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण- 2008, पृष्ठ – 91
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण -2001, पृष्ठ – 98

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रेमचंद के उपन्यासों में जनभाषा

डॉ. अजय कुमार
सहायक प्राचार्य, हिन्दी,
एस.जे.एस.कॉलेज, बाथो, दरभंगा
मो.नं.-9708261978
ईमेल- ajaykdbg1990@gmail.com

सार

प्रेमचंद का युग स्वाधीनता आंदोलन का युग था। यही वह समय था जिसमें हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का विवाद सांप्रदायिक आधार ले रहा था। प्रेमचंद पहले कथाकार हैं, जिन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को न केवल जन-सामान्य की समस्याओं से जोड़ने का प्रयास किया बल्कि जोड़ा भी। कोई भी उपन्यास अथवा कहानी केवल अपने कथ्य के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं होती, बल्कि कथा कहने की कला भी महत्वपूर्ण होती है। वे कथा लिखने के बजाय कथा कहते हैं। इसीलिए उनके उपन्यासों की कथा कहने की प्रक्रिया में कथा के अन्य तत्वों की तुलना में भाषा की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती है।

प्रेमचंद की लोकप्रियता का प्रमुख कारण उनकी सरल, सहज और जनभाषा ही है। उन्होंने अपनी भाषा को सहज, प्रवाहमान, रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए ग्रामीण मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियों का जमकर प्रयोग किया है, जो उनकी भाषा को सही अर्थों में जन-भाषा प्रमाणित करती हैं। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भी सहज भाव से किया है, जिससे उनकी भाषा किसी सीमा तक काव्यात्मक और सर्जनात्मक हो गयी है।

संकेताक्षरः-उपन्यासकार, हिन्दुस्तानी, यथार्थ, राष्ट्रभाषा, जनभाषा, कथा भाषा, प्रयोगात्मक, लोकप्रियता, संवेदना, संप्रेषण आदि।

प्रस्तावना

भाषा की सरलता का अन्य कारण प्रेमचंद का राष्ट्रभाषा संबंधी विभिन्न समस्याओं का चिंतन भी है, जिसका स्वरूप वे हिन्दी-उर्दू अर्थात् हिन्दुस्तानी की व्यापकता एवं सरल भाषा मानते थे। यद्यपि प्रेमचंद कथा-वर्णन के क्रम में संस्कृत और फारसी के सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं। वहीं प्रकृति-चित्रण के समय हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग उन्हें अधिक रुचिकर लगता है। किंतु पात्रों से हटकर उपन्यासकार के रूप में दी जानेवाली उनकी समस्त टिप्पणियाँ जनभाषा में ही है। हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी के अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्रामीणता का पुट लाने में समर्थ हुए हैं।

प्रेमचंद ऐसा जानते और मानते थे कि हमारी सही भाषा वही हो सकती है जिसका आधार सर्वमान्य बोधगम्यता हो-जिसे सब लोग सहजता से समझ सकें और जब वे ऐसी भाषा की बात करते थे तो उनका इशारा हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी में से इस तीसरे रूप अर्थात् 'हिन्दुस्तानी' के लिए था। यह भाषा हिन्दी और उर्दू के सरल शब्दों के मेल से बनी है और जिसे

हिन्दी और उर्दू जानने वालों के अलावे असंख्य लोग समझते हैं। हिन्दी और उर्दू के सहज और स्वाभाविक मेल से निर्मित इस भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम गाँधी जी ने दिया था। गाँधी जी ने यह 'हिन्दुस्तानी' नाम उस भाषा के लिए सुझाया था जो उस समय की जन भाषा थी और आम जनता के बीच बोली और समझी जाती थी।

गाँधी जी यह जानते थे कि आजादी की लड़ाई हिन्दू-मुस्लिम और सिख-ईसाई के पारस्परिक सौहार्द के बिना नहीं लड़ी जा सकती है। ठीक उसी प्रकार प्रेमचंद भी यह समझते थे कि जब तक हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के बीच की तथाकथित विभाजक-रेखा को नहीं मिटाया जाता, तब तक अपनी बात जन-जन तक पहुँचा पाना किसी भी साहित्यकार के लिए संभव नहीं हो सकेगा। हिन्दी के सुधी साहित्यकार एवं कवि श्री केदार नाथ अग्रवाल ने लिखा है—''लेखक जनता का आदमी है, जनता में रहता है और जनता के लिए लिखता है। अतएव, जिस बात में जनता का हित है उसमें लेखक का हित है, जिस बात में जनता की प्रगति है, उसमें लेखक की प्रगति है। दोनों एक ही समाज के प्राणी हैं, दोनों की एक ही समस्याएँ हैं, दोनों का एक ही लक्ष्य है।''[1]

भाषा शैली के संबंध में प्रेमचंद की अनेक उपलब्धियाँ हैं। एक उर्दू उपन्यासकार का दूसरी भाषा के क्षेत्र में आकर उसे संतुलित रूप देना प्रेमचंद के साथ हिन्दी-भाषा की भी एक बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने कई भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में स्थान दिया है, लेकिन प्रत्येक भाषा के अतिवाद से स्वयं को बचाये रखने का भरसक प्रयास किया है। प्रेमचंद ने जिस गद्य-शैली का निर्माण किया उसे हमें विश्वासपूर्वक जन-शैली कहने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए। यही उनकी विशिष्ट जनशैली जनभाषा को एक निश्चित पहचान और गरिमा देती है।

प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखा करते थे। अतः इतना निश्चित है कि उर्दू पर उनका असाधारण अधिकार रहा होगा और बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखने लगे। इसीलिए हिन्दी की शक्ति और संभावना से वे पूर्ण परिचित थे। किंतु वे यह भी जानते थे कि हिन्दी और उर्दू से परे हटकर हिन्दुस्तान की करोड़ों जनता के लिए लिख रहे हैं, जिनकी भाषा जनभाषा है। हिन्दी में प्रकाशित होनेवाला प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'सेवा सदन' था। भाषा की दृष्टि से इसकी सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसके हिन्दू पात्र तत्सम प्रधान हिन्दी बोलते हैं और मुसलमान उर्दू प्रधान हिन्दी। किंतु उसका एक ग्रामीण और अशिक्षित पात्र मदन सिंह सर्वसाधारण, बोधगम्य हिन्दुस्तानी अर्थात् जनभाषा में बातें करता है। चूँकि 'सेवा-सदन' विकास की दृष्टि से अपनी पूर्ववती रचनाओं की अपेक्षा विकसित रचना है, अतः इसकी भाषा में सहजता, स्वाभाविकता तथा गत्यात्मकता अधिक है—''धन्य हो महाराज! तुमने तो डोंगा ही डुबा दिया। फिर तुमने जनवासे का क्या सामान किया है? क्यों तुम्हें फुरसत ही नहीं मिली या खर्च से हिचक गये? मैंने तो इसीलिए चार दिन पहले ही तुम्हें लिख दिया था। जो मनुष्य ब्राह्मण को न्योता देता है, वह उसे दक्षिणा देने की भी सामर्थ्य रखता है।''[2] मदन सिंह की भाषा जितनी रसपूर्ण है पद्म सिंह की भाषा उतनी ही शुष्क एवं नीरस। गाँव की बारात का चित्रण सरल वाक्य की संरचना में हुआ है। पूरा का पूरा दृश्य मूर्तिमान हो उठा है—''बारात जनवासे को चली, रसद का सामान बँटने लगा। चारों ओर कोलाहल होने लगा। कोई कहता था मुझे घी कम मिला, कोई गोहार लगाता था कि मुझे उपले नहीं दिये गये। लाल बैजनाथ शराब के लिए जिद कर रहे थे।''[3]

मदन सिंह के छोटे भाई पं॰ पदम सिंह जो शहर में वकील है, उनकी भाषा का उदाहरण द्रष्टव्य है—''भैया, ईश्वर के लिए आप मेरे संबंध में ऐसा विचार न करें। यदि मेरे प्राण भी आपके काम में आ सकें तो मुझे आपत्ति न होगी। मुझे यह हार्दिक अभिलाषा रहती है कि आपकी कोई सेवा कर सकूँ।''[4]

'प्रेमाश्रम' के मुस्लिम पात्र गौस खाँ की भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है—''हुजूर का फर्माना बहुत दुरुस्त है। आप खानदान के सरपस्त और मुख्बी हैं। आपके मन्सब से किसे इनकार हो सकता है?''[5] 'प्रेमाश्रम' के मनोहर के द्वारा हाकिम को रिश्वत देने के विरोध में सुक्खू से कहते हैं—''हमीं लोग तो रिसवत देकर उनकी आदत बिगाड़ देते हैं। हम न दें तो वह कैसे पाएँ। बुरे तो हम हैं। लेने वाला मिलता हुआ धन थोड़े ही छोड़ देगा? यहाँ तो आपस में ही एक दूसरे को खाये जाते हैं। तुम हमें लूटने को तैयार हम तुम्हें लूटने को तैयार। इसका और क्या फल होगा?''[6]

संतुलन और समन्वय प्रेमचंद की भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता है। शायद इसीलिए 'प्रेमाश्रम' के ग्रामीण पात्र

साधारण प्रचलित तद्भव और अंग्रेजी के विकृत शब्दों का प्रयोग करते हैं तो शिक्षित पात्र तत्सम शब्दों के प्रचलित रुप का प्रयोग करते हैं। 'प्रेमाश्रम' की भाषा का यह स्वरूप हिन्दी, उर्दू और जनपदीय भाषाओं का मिश्रित रूप है, जो जनसाधारण की बोधगम्यता की ओर उन्मुख है।

'प्रेमाश्रम' की भाँति ही भाषा की दृष्टि से 'रंगभूमि' प्रेमचंद की अपेक्षाकृत उत्तरोत्तर विकासशील रचना है। इसकी भाषा में अधिक सजीवता परिलक्षित होती है। वे अधिकतर बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं। इस उपन्यास का नायक सूरदास जब दार्शनिकता से परिपूर्ण गंभीर बात भी कहता है तो माध्यम जनभाषा को ही चुनता है। एक ही उदाहरण पर्याप्त है—''सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं। बाजी पर बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं, धक्के पर धक्का सहते हैं, पर मैदान में डटे रहते हैं। उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ता, हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती। दिल पर मालिन्य के छीटे नहीं आते। न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं, खेल में रोना कैसा। खेल हँसने के लिए है, दिल बहलाने के लिए।''[7]

'निर्मला' की भाषा पूरे तौर पर सामान्य बोलचाल की भाषा है। सारे उपन्यास में शायद ही कहीं कोई क्लिष्ट शब्द प्रयुक्त हुआ हो। इस उपन्यास के सभी पात्र एक ही वर्ग से संबंधित होने के कारण लगभग एक सी ही भाषा 'हिन्दुस्तानी' या जनभाषा का प्रयोग करते हैं। 'निर्मला' उपन्यास में ''सीधी-सादी कथा को सीधे-सादे ढ़ंग से साधारण भाषा में प्रस्तुत किया गया है।''[8]

सेवासदन से 'कर्मभूमि' की यात्रा में प्रेमचंद की संवेदना के साथ-साथ उनकी भाषा का भी विकास हुआ है। सेवासदन प्रेमचंद की कथा-भाषा का प्रारंभिक रुप है वहाँ लेखक की विचारधारा विकसित नहीं है। 'कर्मभूमि' में मुखर राजनीतिक चेतना का प्रभाव भाषा पर देखा जा सकता है। प्रो. शांतिकुमार की भाषा का उदाहरण देखा जा सकता है—''गवर्नमेण्ट तो कोई चीज नहीं। पढ़े-लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाए रखने के लिए एक संगठन बना लिया है। उसी का नाम गवर्नमेण्ट है। गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवर्नमेण्ट का खातमा हो जाता है।''[9] लाल समकांत की भाषा, प्रो. शांतिकुमार की भाषा की तरह किताबी तथा कृत्रिम नहीं है—''बस, तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठीकेदार रह गये हो, और सब तो अधमी है। वही माल जो तुमने अपने घमण्ड में लौटा दिया, तुम्हारे किसी दूसरे भाई ने दो-चार रुपये कम-बेश देकर ले लिया होगा। उसने तो रुपये कमाए, तुम नींबू-नोन चाटकर रह गये। डेढ़ सौ रुपये तब मिलते है, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जाएँ। मुँह का कौर नहीं है।''[10]

'कर्मभूमि' में दोनों ही भाषाओं का सुंदर समन्वय किया है, जो प्रेमचंद की भाषा की समन्वयात्मक नीति को व्यावहारिक रुप देने में सफल है। जनभाषा का इतना अधिक प्रौढ़, सुंदर और समर्थ प्रयोग ही है।

'गोदान' प्रेमचंद का अंतिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। हिन्दी कथा साहित्य में यह 'मील के पत्थर' की तरह है। 'गोदान' में आंदोलन न होने तथा 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में आंदोलन होने के बावजूद 'गोदान', 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' से श्रेष्ठ उपन्यास है। 'गोदान' की भाषा का विभाजन पात्रों तथा लेखक की भाषा में किया जा सकता है। उसमें भी ग्रामीण कथा तथा शहरी कथा में पात्रों में पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों की भाषा में अंतर है। लेखक अपने पात्रों के भाषा प्रयोग के प्रति सादगी रखता है।

अपने पात्रों का परिचय तथा चरित्र-चित्रण करते हुए प्रेमचंद की भाषा सूचनात्मक हो जाती है। वे अपने पात्र की आयु उसकी शारीरिक बनावट, मानसिक स्तर तथा उसकी सामाजिक स्थिति की सूचना देते है—''सोना उम्र से किशोरी, देह के गठन से युवती और बुद्धि से बालिका थी, जैसे उसका यौवन उसे आगे खींचता था, बालपन पीछे।.....लंबा रुखा, किंतु प्रसन्न मुख, ठूड़ी नीचे को खींची हुई, आँखों में एक प्रकार की तृप्ति न केश में तेल, न आँखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबा दिया हो।''[11]

गाय के मरने पर होरी धानिया से अपना संदेह हीरा पर प्रकट करता है तो व्यग्र हो उठती है—''धनिया आवेश में बोली-अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाये। मैं बिना लाला को बड़े घर भिजवाये मानूँगी नहीं। तीन साल चक्की पिसवाऊँगी, तीन साल। वहाँ से छूटेंगे, तो हत्या लगेगी। तीरथ करना पड़ेगा। भोज देना पड़ेगा। इस धोखे में न रहे लाला! और गवाही दिलवाऊँगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।''[12] इसी प्रकार दुलारी सहुआइन की भाषा का उदाहरण द्रष्टव्य है—''बाकी

बड़ी गाल-दराज औरत है भाई! मरद के मुँह लगती है। होरी ही जैसा मरद है कि इसका निबाह होता है। दूसरा मरद होता तो एक दिन न पटती।''[13]

कथा भाषा की सफलता इस बात में होती है कि वह बिना मुखर हुए तनाव तथा मार्मिक बढ़ाने में सक्षम हो। वह यथार्थ की कलात्मक प्रस्तुति तथा संप्रेषण करने में सक्षम हो। वर्णन तथा चित्रण में प्रेमचंद की भाषा क्षमता देखने लायक होती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा भाषा की परंपरा का पालन भी है और उसका विवेकानुसार त्याग भी है। वे यह भी मानते थे कि जनभाषा में पारस्परिक संपर्क की दीर्घ परंपरा है और जनभाषा ही विभिन्नता में एकता की स्थापना कर सकेगी।

संदर्भ सूची

1. समय-समय पर-श्री केदार नाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. वर्ष-2021, पृ.सं.-167
2. सेवासदन-प्रेमचंद, प्रभात प्रकाशन, पटना, प्र. वर्ष-2016, पृ.सं.-158
3. वही, पृ.सं.-189
4. वही, पृ.सं.-158
5. वही, पृ.सं.-20
6. प्रेमाश्रम-प्रेमचंद, भारतीय साहित्य संग्रह प्रकाशक, दिल्ली, प्र. वर्ष-2014, पृ.सं.-03
7. रंगभूमि-प्रेमचंद, फिंगर प्रिंट पब्लिशिंग, नई दिल्ली, प्र. वर्ष-2019, पृ.सं.-129
8. प्रेमचंद और उनके उपन्यास-डॉ. उषा ऋषि, पृथ्वीराज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 1974, पृ.सं.-164
9. कर्मभूमि-प्रेमचंद, नई सदी बुक हॉउस, नई दिल्ली, प्र. वर्ष-2015, पृ.सं.-220
10. वही, पृ.सं.-55
11. गोदान-प्रेमचंद, नई सदी बुक हॉउस, नई दिल्ली, प्र. वर्ष-2016, पृ.सं.-36
12. वही, पृ.सं.-111
13. वही, पृ.सं.-45

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित सिंहलद्वीप की राजकुमारी लघुकथा संग्रह में मानवीय सरोकार

डॉ. राजपाल
हिंदी-विभाग
गुरु गोरक्षनाथ राजकीय महाविद्यालय हिसार, हरियाणा

सारांश

सामाजिक परिवेश में बहुधा ऐसा कम ही देखने में मिलता है कि कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल में ही सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयोगों और कार्यक्रमों गतिविधियों के कारण चर्चा और आकर्षक केंद्रबिंदु बन जाए। जनसाधारण तो क्या प्रबुद्ध वर्ग भी उसके प्रति प्राय उदासीन ही रहता है। सिहाग की प्रखर बौद्धिकता, गहरी सामाजिक सांस्कृतिक समझ, प्रभावी संप्रेषणशीलता और सर्वसाधारण को समझने समझाने की अद्भुत कला जिसने शैक्षणिक शोध सैमीनार सामाजिक सरोकारों को जन साधारण में परिणित कर दिया। किसी विद्वान ने कहा था, "व्यक्ति को शिक्षक या वक़ील बनना चाहिए, क्योंकि उसके पास देश व समाज का कार्य करने के लिए पर्याप्त अवसर और समय होता है"।

बीज शब्द - सौम्यता, नैतिकता, बौद्धिकता सरोकार आदि।

मूल शोध-नरेश सिहाग का व्यक्तित्व एक सरल, सहज, सजग, जिज्ञासु प्रवृत्ति, कल्पनाशील,पहल की योग्यता और नेतृत्व गुणों की टकसाल है। जिसमें वकील व्यवसाय से होते हुए साहित्यकार, लेखक सफल संपादक के गुण प्रलक्षित होते है। सौम्यता, नैतिकता, बौद्धिकता समाज को समायोजित करते है। सिहागजी द्वारा रचित 'सिंहलद्वीप की राजकुमारी' लघुकथा संग्रह मानवीय सरोकार पर केंद्रित है।

प्रस्तुत आलोच्य शोध में झलक देखी जा सकती है।

सच्चा नेता वो होते हैं जो अपनी शक्ति और धन से नहीं बल्कि अपने साहस, बुद्धिमनी और प्रेम से दूसरों को दिलों को जीतते हैं, एक उदाहरण दृष्टांत है–

"अर्जुन ने पहले ख़ज़ाने को समझदारी से खोजा फिर जादुई वन को अपने साहस और बुद्धिमानी से राक्षस को हराया और सबसे महत्वपूर्ण बात उसने प्रजा के साथ मिलकर उनके दिलों में विश्वास और प्रेम पैदा किया।" [1]

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अर्जुन ने जो किया वह किसी अन्य प्रतियोगी से मूल्यवान था। वह केवल एक वीर ही नहीं था बल्कि एक सच्चा नेता था।

उपकार के ऋण कथा मे रामलाल ने मोहन की सहायता की एक उदाहरण- "मोहन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया आपकी दी हुई मदद से मुझे हमेशा सिखाया कि उपकार का आज ऋण कभी नहीं चूकता, क्योंकी उपकार का असली मूल्य हमेशा उसे करने वाले की दिल् में होता है।"[2] इस प्रकार मोहन ने अपने जीवन में उपकार का असली अर्थ समझा और वह हमेशा दूसरों की मदद करने की कोशिश करता रहा।

धोखेबाज़ गिलाड कहानी में भी गिलाड नामक व्यक्ति लोगों का शोषण करता और पैसे हड़प लेता था। गाँव के एक बुद्धिमान व्यक्ति ने गिलाड की सच्चाई का पता लगाया। उन्होंने गाँव वालों को एक साथ बुलाया और गिलाड की चालाकियों का खुलासा किया-एक बानगी -गिलाड को यह समझ में आ गया था कि धोखा धड़ी से कभी भी सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती। वह यह समझ गया था कि सच्चाई और ईमानदारी से ही किसी का दिल जीता जा सकता है, न की धोखाधड़ी से हैं।"[3]

अपने फ़ायदे के लिए दूसरों का अहित नहीं करना चाहिए।

सहयोग की भावना 'कथा में गाँव के लोग मिलकर काम करते हैं और एक दूसरे की मदद करते हैं। तो कोई भी मुश्किल हो सकती है।सहयोग की भावना से किसी भी संकट से निपटा जा सकता है। मोहन राजू और रामू दोस्ती के सहवाग ने गाँव को एक नया जीवन दिया। एक उद्धरण -

"गाँव वाले इस घटना को याद रखते हुए एक दूसरे की मदद करने का वादा करते हैं क्योंकि उन्होंने समझा की सहयोग की भावना से ही हम हर चुनौती का सामना कर सकते हैं"।[4]

'लालच का अंत' कथा में लालच कभी भी किसी को सच्ची संतुष्ट नहीं दे सकता हूँ। ईमानदारी और संतोष से जीवन की सच्ची खुशी मिलती है। इसी को इंगित करता हुआ एक उदाहरण-

"हरिराम से रामू ने माफ़ी माँगी उसने तय किया वह आगे किसी लालच में नहीं आएगा। फिर से रामू बगीचे से ख़रीदने आया, लेकिन इस बार उसने सच्चाई और ईमानदारी से कार्य किया। और सही मूल्य पर ही फल ख़रीदें"।[5]

इसी प्रकार साहसी राजकुमार विक्रम हमेशा अपने राज्य की रक्षा के बारे में सोचता और हर चुनौती का सामना करने के लिए तैयार रहता।विक्रम को उसके राज्य में बहुत पसंद करते थे। क्योंकि वह बहादुर ही नहीं बल्कि ईमानदार भी था। एक मिशाल देखिए–

"विक्रम ने बिना घबराए अपनी तलवार को निकाला और राक्षस से मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गया। एक भयंकर लड़ाई के बाद विक्रम ने अपनी सूझ-बूझ और साहस से राक्षस को हराया। राक्षस ने हार मानते हुए विक्रम से कहा तुम्हारा साहस वास्तव में ही अद्‌भुत है।"[6]

निष्कर्ष

इसी प्रकार सिंगल द्वीप की राजकुमारी लघु कथा संग्रह में सराय का मालिक, संतोष का फल, बड़ों की सीख, सच्चा ज्ञान, माँ की ममता, मित्रता आदि कथाएं पाठक के बीच उपस्थित रहती है। अपने अंदर गहन संवेदना एवं निश्छल भावों को समेटे इनकी लघुकथाएं अंतर्मन को टटोलती हुई झकझोर देती है। लेखक कहीं कथाओं के सागर में अपनो की स्मृतियों में खोया है तो वहीं आध्यात्मिक जीवन दर्शन सामाजिक, वेदना-संवेदना इंसानियत, जानवर, पशु-पक्षी आदि विषयों पर गहन पकड़ व अनुभव जगह जगह परिलक्षित करता हैं। शब्दों का सरल व सटीक प्रयोग बरबस ही अपनी संस्कृति व ग्रामीण परिवेश से जोड़कर पाठक को बचपन की स्मृतियों में डूबा देता है। इस प्रकार लेखक की लेखनी पाठक वर्ग को सच्चाई ईमानदारी, साहस, सहयोग के लिए प्रेरित करती है करती रहेगी।

संदर्भ सूची

1. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, डॉ. नरेश सिहाग, एस एस पब्लिकेशन्स, दिल्ली-110032, पृष्ठ संख्या; 9
2. वही, पृष्ठ संख्या; 12
3. वही, पृष्ठ संख्या; 16
4. वही, पृष्ठ संख्या; 19
5. वही, पृष्ठ संख्या; 25
6. वही, पृष्ठ संख्या; 35

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग के 'पशु पक्षी हमारे मित्र' काव्य संग्रह: बाल काव्य में एक गहन अध्ययन

डॉ. मीरा चौरसिया
वरिष्ठ सहायक आचार्या
चमन लाल महाविद्यालय लंढौरा
हरिद्वार उत्तराखंड

डॉ. नरेश सिहाग हिंदी बाल साहित्य के क्षेत्र में एक प्रख्यात नाम हैं। उनका काव्य संग्रह "पशु पक्षी हमारे मित्र" बाल साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान है। इस संग्रह में उन्होंने बच्चों को प्रकृति और जीव-जंतुओं से जोड़ने का एक अनूठा प्रयास किया है। इस शोध आलेख में हम इस संग्रह का विस्तृत विश्लेषण करेंगे और यह जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे डॉ. सिहाग ने अपने काव्य के माध्यम से बच्चों में प्रकृति प्रेम और पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की है।

डॉ. नरेश सिहाग का जीवन और साहित्यिक यात्रा

डॉ. नरेश सिहाग एक प्रतिष्ठित एडवोकेट और समाजसेवी हैं, जिन्होंने कानून के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है। उनका जीवन व कृतित्व प्रेरणादायक है, जो युवाओं के लिए एक आदर्श साबित हो सकता है।

प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

डॉ. नरेश सिहाग का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था, लेकिन उन्होंने अपनी मेहनत और लगन से शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की। प्रारंभिक शिक्षा के बाद, उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए कानून का क्षेत्र चुना और अपनी कड़ी मेहनत से प्रतिष्ठित संस्थानों से कानूनी शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने कानून के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन किया, जिसमें संवैधानिक कानून, आपराधिक कानून, और सिविल कानून शामिल हैं। उनकी शैक्षिक योग्यता ने उन्हें समाज में एक प्रभावशाली स्थान दिलाया।

वकालत में योगदान

डॉ. नरेश सिहाग एक कुशल एडवोकेट के रूप में जाने जाते हैं, जिनका कानूनी ज्ञान और तर्कशक्ति बेहतरीन है। वे न केवल व्यक्तिगत मामलों में कानूनी परामर्श देते हैं, बल्कि समाज के विभिन्न तबकों के लिए भी न्याय दिलाने का कार्य करते हैं। उनकी विशिष्ट कानूनी रणनीतियाँ और स्पष्ट दृष्टिकोण उन्हें अपने क्षेत्र में अलग बनाते हैं। कई जटिल मामलों में उन्होंने अपने मुवक्किलों को न्याय दिलाने में अहम भूमिका निभाई है।

समाजसेवा

वकालत के अलावा, डॉ. नरेश सिहाग समाजसेवा में भी सक्रिय हैं। वे समाज के वंचित और पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं। विभिन्न सामाजिक संगठनों से जुड़े होने के कारण, वे गरीबों और जरूरतमंदों को न्याय दिलाने के साथ-साथ उन्हें शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने में भी सहायक रहे हैं। उनका मानना है कि समाज का विकास तभी संभव है जब सभी को समान अवसर और अधिकार प्राप्त हों।

लेखन और विचारधारा

डॉ. नरेश सिहाग का लेखन कार्य भी उनके व्यक्तित्व का अहम हिस्सा है। उन्होंने कानून और सामाजिक न्याय से जुड़े कई महत्वपूर्ण विषयों पर लेख लिखे हैं। उनके लेखन में गहन विचारधारा और न्याय की पक्षधरता स्पष्ट झलकती है। वे अपने लेखों के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाने का कार्य करते हैं, ताकि लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग हों।

साहित्यिक योगदान

डॉ. नरेश सिहाग की रचनाओं में ग्रामीण जीवन, सामाजिक मुद्दों और व्यक्ति के आंतरिक संघर्षों को प्रमुखता से उकेरा गया है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध, और कविता के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त किया है। उनके साहित्य में विशेष रूप से समाज के कमजोर और उपेक्षित वर्गों की आवाज़ को प्रमुखता दी गई है। इसके साथ ही, उनके लेखन में राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति का भी गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।उनकी रचनाएँ पाठकों को समाज की कड़वी सच्चाई से रूबरू कराती हैं, और उन्हें सोचने पर मजबूर करती हैं। सामाजिक न्याय, समानता और स्वतंत्रता जैसे विषय उनके साहित्य में बार-बार उभरते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि उनकी लेखनी समाज को सुधारने और नई दिशा देने की प्रेरणा देती है।

कानून और साहित्य का संगम

एक एडवोकेट होने के नाते, डॉ. नरेश सिहाग ने कानून के सिद्धांतों और हिंदी साहित्य को साथ में जोड़कर एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने न्यायिक व्यवस्था में आने वाली समस्याओं, भ्रष्टाचार और आम आदमी के संघर्षों को अपनी रचनाओं में बखूबी चित्रित किया है। उनके लेखन में विधि और साहित्य का यह अनोखा संगम देखने को मिलता है, जो उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग और विशिष्ट बनाता है।

हिंदी साहित्य में उनके योगदान का महत्त्व

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया है, बल्कि उसे नए विचारों और विषयों से सशक्त किया है। उनका साहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक प्रासंगिक है। उन्होंने न केवल हिंदी साहित्य को बढ़ावा दिया है, बल्कि नए लेखकों और साहित्यकारों को भी प्रेरित किया है।

इस प्रकार कहां जा सकता है कि डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट का हिंदी साहित्य में योगदान अति महत्त्वपूर्ण है। उनकी रचनाएँ समाज के सच्चे चित्रण के साथ-साथ सामाजिक बदलाव की प्रेरणा भी देती हैं। वे साहित्य और कानून के क्षेत्र में अपने गहन अनुभव और संवेदनशीलता के साथ एक ऐसी धारा प्रस्तुत करते हैं, जो पाठकों को साहित्य के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक मूल्यों को समझने की भी प्रेरणा देती है। उनके योगदान को हिंदी साहित्य में सदैव सम्मान के साथ याद किया जाएगा।

"पशु पक्षी हमारे मित्र" काव्य संग्रह का विश्लेषण

डा नरेश सिहाग एक प्रसिद्ध बाल साहित्यकार हैं, जिन्होंने बच्चों के लिए अनेक मनोरंजक और ज्ञानवर्धक कहानियाँ लिखी हैं। इनमें से कई कहानियाँ पशु-पक्षियों को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। इन कविताओं के माध्यम से उन्होंने बच्चों को प्रकृति और जीव-जंतुओं के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना पैदा करने का प्रयास किया है।

काव्य का विश्लेषण

डॉ. सिहाग की कविताएँ सरल भाषा में लिखी गई हैं और बच्चों के मन में आसानी से घर कर जाती हैं। उनकी कविताओं में पशु-पक्षी न केवल मित्र के रूप में बल्कि शिक्षक और मार्गदर्शक के रूप में भी चित्रित किए गए हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों जैसे गाय, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया, मोर आदि का वर्णन किया है।

1. प्रकृति और जीव-जंतुओं का चित्रण

प्रकृति का सौंदर्य : डॉ. सिहाग ने अपनी कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य को बहुत ही खूबसूरती से चित्रित किया है। उन्होंने फूलों, पेड़ों, पहाड़ों, नदियों आदि को अपनी कविताओं में शामिल करके बच्चों को प्रकृति के करीब लाने का प्रयास किया है।

जीव-जंतुओं के प्रति संवेदनशीलता : उन्होंने अपनी कविताओं में विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं को चित्रित किया है और बच्चों को उनके प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने बच्चों को बताया है कि सभी जीव-जंतु हमारे मित्र हैं और हमें उनका सम्मान करना चाहिए।

'पशु पक्षी हमारे मित्र' के 'कुत्ता' कविता से उदाहरण द्रष्टव्य है–

"पुचकार तो पूंछ हिलाकर पैर चाटने आता।
सीटी देते जी दुश्मन को झपट काटने आता।।
जो कुछ भी मिलता खा लेता है धन्यवाद कहता है।
दिया हुआ टुकड़ा वर्षों तक इसे याद रखता है।।"[1]

2. बाल मनोविज्ञान और भाषा

सरल और सहज भाषा : डॉ. सिहाग ने अपनी कविताओं में सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया है, ताकि बच्चे आसानी से उनकी कविताओं को समझ सकें।

बाल मनोविज्ञान का ज्ञानरू उन्होंने अपनी कविताओं में बच्चों के मनोविज्ञान का गहरा ज्ञान दिखाया है। उन्होंने बच्चों की रुचियों, भावनाओं और कल्पनाओं को ध्यान में रखकर अपनी कविताएं लिखी हैं।

'कौआ' कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"भादो गया कनागत आये, अब तो हैं इसके मन भाए।
काँव- काँव करतो आवेगा, हलुवा माल पुवा पायेगा।।
होता देख अपना आदर, बुलवा लेगा अपने सगे बिरादर।
इससे शिक्षा सब यह लेना, थोड़ा-थोड़ा सबको देना।"[2]

3. शिक्षाप्रद और मनोरंजक

शिक्षाप्रद : डॉ. सिहाग की कविताएं न केवल मनोरंजक हैं बल्कि शिक्षाप्रद भी हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से बच्चों को कई तरह के ज्ञान दिए हैं, जैसे कि पर्यावरण संरक्षण, जीव-जंतुओं के बारे में जानकारी आदि।

'ऊंट' कविता में बताया गया है कि

"लंबी गर्दन लंबी टांग, छोटी पूंछ अनोखा स्वांग।
साख सुरड़कर सुडप जायेगा, काटने डंठल हडप जायेगा।।

जो कुछ खाता सब कुछ पचता, बरगद नीम बाकी न पचता।
नहीं होती पेट में गड़बड़, गोल मेंगने हकता तड़ तड़"।।[3]

मनोरंजक : डॉ. सिहाग की कविताएं बच्चों को बहुत पसंद आती हैं क्योंकि वे बहुत ही मनोरंजक हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में तुकबंदों का प्रयोग किया है, जिससे उनकी कविताएं और अधिक रोचक बन गई हैं।

'बिल्ली' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है–

"बिल्ली लंबी मूंछों वाली, कोई धौली कोई काली।
कई तरह की रंग बिरंगी, धोखेबाज शिकारन जंगी।।
नटखट पूरी है हर फन में, रहती सदा अपने जी धुन में।
चूहा चिड़िया जो कुछ है पाती, झपट मार ले जाए खाती।।"4

4. सामाजिक संदेश

पर्यावरण संरक्षण : डॉ. सिहाग ने अपनी कविताओं के माध्यम से बच्चों को पर्यावरण संरक्षण के लिए जागरूक किया है। उन्होंने बच्चों को बताया है कि हमें प्रकृति का ख्याल रखना चाहिए और प्रदूषण को रोकना चाहिए।

जीव-जंतुओं के प्रति दया भाव : उन्होंने बच्चों को जीव-जंतुओं के प्रति दया भाव रखने के लिए प्रेरित किया है। उनकी कविताओं में जीव-जंतुओं के प्रति सम्मान की भावना दिखाई देती है। वे बच्चों को सिखाते हैं कि सभी जीवित प्राणियों को प्यार और सम्मान देना चाहिए।

'गाय' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है–

"गाय देश की गौ माता है, जीवन की जीवन दाता है।
भूसा दाना दलिया चोकर, खा लेती है राजी होकर।
दिन को जा जंगल में चरती, छाया बैठ जुगाली करती।
सांझ पड़े दुम ऊंचा करके, लगी रास्ते अपने घरके।"5

हिंदी बाल साहित्य में योगदान

डॉ. नरेश सिहाग ने हिंदी बाल साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपने काव्य संग्रह "पशु पक्षी हमारे मित्र" के माध्यम से बच्चों में प्रकृति प्रेम और पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की है। उन्होंने बच्चों के लिए ऐसी कविताएं लिखी हैं जो न केवल मनोरंजक हैं बल्कि शिक्षाप्रद भी हैं।

निष्कर्ष

डॉ. नरेश सिहाग का काव्य संग्रह "पशु पक्षी हमारे मित्र" हिंदी बाल साहित्य का एक अनमोल रत्न है। इस संग्रह के माध्यम से उन्होंने बच्चों को प्रकृति और जीव-जंतुओं से जोड़ने का एक अनूठा प्रयास किया है। उनकी कविताएं बच्चों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. नरेश सिहाग, प्रकाशक सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2025, पृष्ठ -12
2. वह, पृष्ठ संख्या-11
3. वह, पृष्ठ संख्या-13
4. वह, पृष्ठ संख्या-28
5. वह, पृष्ठ संख्या-16

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. राजपाल की रचना संसृति

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सह आचार्य एवं शोध निर्देशक (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

डॉ. राजपाल की रचना-रुचि बहुआयामी, बहुमुखी व बहुव्यापी है। ये अधिकतर गम्भीर विषयों पर विचारपूर्ण, सुसंगठित व गहन मनन की वक्तृता प्रस्तुत करने के अभ्यासी रहे हैं। कथा-कहानियों, उपन्यासों, निबंधों पर, विस्तृत पुस्तकों पर, ज्ञानात्मक लेखों पर इनके लेख, टिप्पणियाँ व समीक्षाएँ तथा इनके द्वारा स्वयं प्रणीत पुस्तकें इनके विराट विचार की द्योतक स्मारक हैं। इनकी यह विचारशीलता न केवल इनके अध्यापन में झलक कर बहुसंख्य विद्यार्थियों को पल्लवित-शिक्षित करती है कर रही वहीं साथ ही विश्लेषणात्मक साहित्य के ज्ञान सागर में संश्लेषित भी होती जाती है। डॉ. राजपाल का जन्म हिसार जिले में बरवाला कस्बे के निकट स्थित कल्लर भैणी नामक छोटे से गाँव में हुआ था। माता-पिता सामान्य से किसान थे, मगर उन्होंने अपनी सामान्य स्थिति में भी पुत्र को मनचाही शिक्षा दिलवाकर असामान्य उन्नति तक पहुंचाया। इन्होंने हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले में स्थिति विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। यद्यपि ये डॉक्टरेट होने से पहले ही लेखन में संलग्न रहे थे परंतु पीएच.डी. के उपरांत उनके लेखन में एक अलग ही त्वरा, मारक-दृष्टि एवं प्रवाहमयता का संधान हो गया। लेखन के प्रति गाम्भीर्य व गुणात्मकता का समावेश हुआ। उनके द्वारा रची गई प्रथम पुस्तक 'डॉ. धर्मचंद्र विद्यालंकार व्यक्तित्व व कृतित्व' है जो सुविख्यात साहित्यकार धर्मचंद्र विद्यालंकार के जीवन और लेखन पर एक बेहतरीन शोधपरक ग्रंथ है। इन्होंने इस पुस्तक में धर्मचंद्र जी के जीवन संघर्ष के साथ उनकी लेखन प्रतिभा व सामर्थ्य का तर्कपूर्ण और भावपूर्ण वर्णन किया है। डॉ. राजपाल की इस पुस्तक की भूमिका सुप्रसिद्ध साहित्यकार उदयभानु हंस ने लिखी है। अपनी इस भूमिका में डॉ. राजपाल की लेखन संदृष्टि व विषय-चुनाव से ये सहमत हैं। वे लेखन-विषय के सन्दर्भ में लिखते हैं, "वस्तुतः संवेदना और शिल्प की दृष्टि से डॉ. विद्यालंकार का विपुल रचना-संसार है। साहित्य की विविध विधाओं को समेटे हुए है।"[1]

डॉ. राजपाल की आवश्यकता विभिन्न लेखकों को भी समय-समय पर पड़ती रहती है। अपनी कृतियों की भूमिका लेखन के लिए डॉ. राजपाल की लेखन प्रतिभा का प्रसाद ग्रहण करना उनकी प्रथम अभिलाषाओं में शामिल रहता है, इसलिए आप प्रभृति लेखकों की रचनाओं में इनके द्वारा लिखी गई सारपूर्ण, तथ्यपरक व विधा-संदर्भित रोचक भूमिकाएँ पढ़ सकते हैं। इन भूमिकाओं को पढ़कर डॉ. राजपाल की लेखनी का दिग्दर्शन तो होता ही है साथ ही मूल लेखक की सम्पूर्ण रचना का सारगर्भित विश्लेषणात्मक परिदृश्य भी मिल जाता है। कहने का अर्थ यही है कि ये भूमिकाएँ भी स्वयं में सहित्यिक रचना सा अधिभार रखते हुए लेखक की लेखन-गरिमा का चित्र प्रस्तुत करती हैं। डॉ. राजपाल द्वारा कुछ पुस्तकों में लिखी गई भूमिकाओं का वर्णन इस प्रकार है—'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'महान उद्योगपति बिरला से सान्निध्य', 'हिंदी साहित्य को राजस्थान का योगदान', 'भारत के अनमोल रत्न- भारत के क्रांतिकारी', 'इतिहास की परिक्रमा', 'संत रविदास और दलित अस्मिता', 'वेद प्रचार', 'पंजाब में भारतीय संस्कृति व सन्तराम बी.ए. का लेखन सन्दर्भ', 'महापराक्रमी पुरुष महाराज सूरजमल', 'जम्भाणी साहित्य साधक संत साहबराम', 'फूल की खुशबू' आदि।

डॉ. राजपाल एक तटस्थ शोधक व मर्मज्ञ दृष्टि के अध्येता रहे हैं। इससे इनके लेखन में स्तरहीन, उथला व गपबाजी से सना साहित्य किंचित मात्रा में भी नहीं पाया जाता है। इनका लेखन प्रामाणिक व साक्ष्यबद्ध होने के साथ-साथ लोकाचार की कसौटी पर कसा हुआ सत्यबद्ध साहित्य है। इन्होंने अपने लेखन को संकुचित दायरों व छोटे आयामों में कभी बन्धित नहीं होने दिया, बल्कि विषयों के चुनाव व सामग्री के ग्रहण में चहुंमुखी दृष्टि रखी है। इनकी इस विराट चिंतना का चुनाव इनके विभिन्न शोध लेख हैं। यथा- 'हिंदी और भारतीय इतिहास का अन्तर्सम्बन्ध', 'भारत की आंतरिक सुरक्षारू भाषावाद व अन्य चुनौतियाँ', 'राष्ट्रीय सुरक्षा में हिंदी काव्य का योगदान', 'धर्मचंद्र विद्यालंकार की विचार-दृष्टि', 'संत साहबराम द्वारा विरचित- जम्भसाररू महाकाव्यत्व', 'कबीरदास के सामाजिक सरोकार', 'सत्ता संघर्ष और दलित अस्मिता', 'भारतीय संस्कृति के पुरोधा : सन्तराम बी.ए.', 'विश्व में हिंदी शोध-परिदृश्य'।

डॉ. राजपाल के लेखन पर बाबा साहब अंबेडकर, महात्मा गांधी, सर छोटूराम आदि का प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। उनके लेखन में गरीब, शोषत व पीड़ित के प्रति सहभाव प्रकट होता है, वहीं भारतीय संस्कृति के सरोकारों से सम्बद्ध होने की उनकी सकारात्मक रुचि प्रदर्शित होती है। भारत के महापुरुषों में इनकी अगाध श्रद्धा तो है ही साथ ही देश की अखंडता एवं सुदृढ़ता में इनका सम्पूर्ण ईमान झलकता है। भारतीय दर्शन, संत मत विचार व महान परम्पराओं में इनकी गहन रुचि परिलक्षित होती है। अपने शोधपत्र 'डॉ. राजपाल की विचार-दृष्टि' में डॉ. सुरेंद्र कुमार सेलवाल लिखते हैं, "डॉ. राजपाल भी डॉ. अंबेडकर, सन्तराम बी.ए., महात्मा गांधी, जम्भाजी महाराज, संत रैदास जैसे विचार दर्शनों से ओत-प्रोत होकर रचनारत रहे हैं।"[2]

डॉ. राजपाल वाकई उपर्युक्त महापुरुषों से विचार-बीज ग्रहण कर पुष्पित-फलित वृक्षों जैसा साहित्य रच रहे हैं। इनकी लेखनी न केवल विषय चयन में माहिर है अपितु वर्णनीय दक्षता से भी लबरेज है। एक बानगी प्रस्तुत है, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित हो जाता है कि चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है।"[3]

डॉ. राजपाल का मन गम्भीर लेखन में ही रमता है, अर्थात खोखले मनोरंजक या दिखाऊ साहित्य में उनकी रुचि ना के बराबर है। हिंदी साहित्य के सुविख्यात निबंध लेखकों, शोधकों, इतिहासज्ञों की तरफ इनकी एकाग्रता इसका प्रमाण है। कथा-कहानी, काव्य आदि इनके विश्लेषण-संश्लेषण के विषय तो हैं, परन्तु स्वयं इन्होंने इस तरफ दृष्टि नहीं घुमाई है। कहने का तात्पर्य यही है, ये इनके साधन तो हो सकते हैं मगर साध्य नहीं हैं। इनकी विश्लेषण शक्ति निम्नोक्त द्रष्टव्य में प्रस्तुत है, "हमारा प्राचीन साहित्य संसार के अन्य देशों के साहित्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध था। तभी तो विश्व के करीब-करीब सभी राष्ट्रों के लोग यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे।"[4]

डॉ. राजपाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यिक हैं, ये को अतिशयोक्ति नहीं है। साहित्य की एक नवीन विधा साक्षात्कार भी होती है। डॉ. राजपाल ने साक्षात्कारकर्ता की हैसियत से भी अपनी सबल उपस्थिति दर्ज करवाई है। उनके द्वारा किया गया प्रसिद्ध समाजसेवी चौधरी धनीराम का साक्षात्कार 'वज्र से कठोर- फूल से कोमल' शीर्षक से छपा था, जो साहित्यिक गलियारों में महत प्रशंसित हुआ। यहाँ डॉ. राजपाल द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उदाहरण से समझिए, "क्या आपको कभी एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपने अनुभवों में नैतिक संघर्ष का सामना करना पड़ा? आपने स्थिति को कैसे सम्हाला?"[5]

इनके द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों में साक्षात्कार-प्रदाता को भाव-विह्वल कर उसका गहरा संवेदन रूप उभारने की क्षमता प्रदर्शित होती है, जो डॉ. राजपाल जैसे संवेदी व्यक्तित्व के धनी साहित्यिक में ही हो सकती है।

डॉ. राजपाल न केवल डॉक्टरेट हैं बल्कि अमेरिकन विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्. की उपाधि से सम्मानित हैं। उन्हें ये उपाधि उनके साहित्यिक अवदान के सापेक्ष मिली है। इन्होंने अन्यत्र भाषा साहित्य को भी अपनी भाषा में पाठकों को उपलब्ध करवाने के लिए 'अनुवादक' की उपाधि प्राप्त की है और इनके द्वारा कई अनुवादित पुस्तकें इस समय प्रकाशन प्रक्रिया में हैं। सन्तराम बी.ए. अनुवाद को बहुत महत्व देते थे। वे मानते थे, "हमारे देश में अभी अनुवाद कार्य को कोई महत्व नहीं दिया जाता। अनुवाद और अनुवादक के प्रति लोगों में अभी आदर बुद्धि नहीं। परन्तु यह एक भाई भूल है। अनुवादक सभ्यता

की एक बहुमूल्य सेवा करता है।"[6]

भारत जैसे देश में अनुवादित साहित्य की बहुत आवश्यकता है ताकि हम विश्व की अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों से जरूरी सान्निध्य कर सकें। डॉ. राजपाल सन्तराम बी.ए. के प्रबल अनुरक्त व प्रशंसक हैं। उनकी राह को इन्होंने अपनी राह बनाया है। आशा है इनके द्वारा अनुवादित महत ग्रंथ है जिसमें स्वास्थ्य दर्शन, सक्सेसफुल पेरेंटिंग, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और प्रबंधन, व्यावसायिक नैतिकता आदि दी है। सम्पूर्ण लेख का सार यही है कि डॉ. राजपाल वर्तमान में बहुमुखी प्रतिभा, तर्कपूर्ण दृष्टि से पूरित मानवतावादी साहित्यकार हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. राजपाल, धर्मचंद्र विद्यालंकार व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2. डॉ. सुरेंद्र कुमार सेलवाल, डॉ. राजपाल की रचना दृष्टि
3. डॉ. राजपाल, हिंदी साहित्य की भूमिका
4. डॉ. राजपाल, भारत की सुरक्षा चुनौतियाँ
5. डॉ. राजपाल, वज्र से कठोर- फूल से कोमल
6. सन्तराम बी.ए., मेरे जीवन के अनुभव

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक एवं एकांकी : भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव

मोनिका
(23BMU7194)
हिंदी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल, बोहर, रोहतक, हरियाणा
Monika175moni@gmail.com, Mob : 9729244616

सारांश : हरियाणा साहित्य अकादमी का नाट्य और एकांकी साहित्य हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। ये रचनाएं न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि समाज को जागरूक और प्रेरित करने का भी उद्देश्य रखती हैं। हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी साहित्य में भाषा और शैली का अनोखा समायोजन देखने को मिलता है। जो साहित्य को और भी प्रभावशाली बनाता है। भाषा में सहजता, प्रवाह और भावनात्मक गहराई के साथ-साथ शैली में नाटकीयता और संवादों की उत्कृष्टता प्रमुख विशेषताएं हैं। इन नाटकों और एकांकियों के विषय आमतौर पर सामाजिक समस्याओं, नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित होते हैं। इनमें किसानों की समस्याएं, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा का महत्त्व, और बदलते समय के साथ समाज में हो रहे बदलावों पर चर्चा की जाती है। नाटककार और लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से समाज को जागरूक करने और बदलाव की दिशा में प्रेरित करने का प्रयास करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से, हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटकों और एकांकियों में हरियाणा की लोक संस्कृति, परंपराओं, और जीवनशैली का गहरा प्रभाव दिखता है। इन कृतियों में हरियाणवी लोकगीत, संगीत, और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है, जो इन्हें और अधिक प्रभावशाली और प्रामाणिक बनाता है।

1. मुख्य शब्द : नाटक।

नाटक साहित्य की एक प्रमुख विधा है, जिसमें समाज और जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से प्रस्तुत किया जाता है। हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक भारतीय समाज, खासकर हरियाणा की विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं को दर्शाते हैं। हरियाणवी नाटकों में चरित्रों की सजीवता, संवादों की सटीकता, और कथा की सशक्त प्रस्तुति देखने को मिलती है।

एकांकी

एकांकी एक संक्षिप्त नाटकीय विधा है, जो एक ही घटना या विषय को केंद्र में रखकर प्रस्तुत की जाती है। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा रचित एकांकी साहित्य अपनी सरलता और गहराई के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। इसमें पात्रों की संख्या सीमित होती है, लेकिन उनके माध्यम से समाज की ज्वलंत समस्याओं जैसे बेरोजगारी, गरीबी, और स्त्री अधिकारों को प्रभावशाली ढंग से उभारा जाता है।

भाषा

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटकों और एकांकियों में हरियाणवी भाषा और हिंदी का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है। हरियाणवी भाषा की सहजता और स्वाभाविकता इन कृतियों को दर्शकों के लिए आकर्षक और सजीव बनाती है। इसके साथ ही, संवादों में प्रयुक्त मुहावरे और स्थानीय शब्दावली न केवल कहानी को मजबूत बनाते हैं, बल्कि हरियाणवी संस्कृति की गहराई को भी उजागर करते हैं।

हरियाणा साहित्य अकादमी

यह अकादमी हरियाणवी भाषा, संस्कृति, और साहित्य को प्रोत्साहित करने और इसे संरक्षित करने का कार्य करती है। नाटकों और एकांकियों के माध्यम से यह समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास करती है।

2. प्रस्तावना

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा प्रस्तुत नाटक और एकांकी साहित्य हरियाणवी संस्कृति, परंपराओं और सामाजिक मूल्यों का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करते हैं। यह साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि समाज के ज्वलंत मुद्दों, परंपराओं, और मान्यताओं को गहराई से समझने और उन्हें साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम भी है। हरियाणा साहित्य अकादमी का उद्देश्य राज्य की सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराओं को संरक्षित करना और उन्हें आधुनिक समाज के साथ जोड़ना है। इसके अंतर्गत इन कृतियों की भाषा की सहजता, शैली की विशेषताएं, और सांस्कृतिक प्रतिबिंबों का गहन अध्ययन किया गया है।

1. मुख्य कृतियां

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित नाटक और एकांकी साहित्य हरियाणवी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आयामों को समृद्ध रूप से प्रस्तुत करते हैं। मुख्य कृतियों के अंतर्गत वे रचनाएं आती हैं, जो अपनी भाषा, विषय-वस्तु, शैली और प्रभावशाली प्रस्तुति के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं

'जाट की बेटी' : सामाजिक मुद्दों पर आधारित नाटक
'पगड़ी संभाल' : परंपराओं का संरक्षण
'धरती के सपूत' : किसान जीवन का चित्रण
'बहू की विदाई' : सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार
'सत्य का मार्ग' : नैतिकता और मूल्यों की स्थापन
'वीरभूमि हरियाणा' : ऐतिहासिक गौरव का वर्णन
'अंधविश्वास' : जागरूकता का प्रयास
'रंगभूमि के कलाकार' : नाटक विधा का महत्त्व

2. प्रभाव

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी पर आधारित यह अध्ययन भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विश्लेषण करता है। हरियाणा का साहित्य क्षेत्र अपने आप में एक विशिष्टता रखता है, जिसमें लोकसंस्कृति, भाषा और क्षेत्रीय संवेदनाओं का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। हरियाणा के नाटक और एकांकी में इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विविधताओं, सामाजिक मुद्दों और भाषा की महत्ता को उजागर किया जाता है।

हरियाणा के नाटकों में प्रयुक्त भाषा का विशेष स्थान है। यहां की भाषा, जिसमें हरियाणवी के शब्दों और मुहावरों का समावेश होता है, न केवल लोकजीवन की सजीव चित्रण करती है, बल्कि क्षेत्रीय संवेदनाओं और समाजिक संरचना को भी दर्शाती है।

3. कारण

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी में भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नाटक और एकांकी की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव का प्रभाव गहरा और विविधतापूर्ण होता है। इन कारणों को समझना न केवल साहित्यिक अध्ययन के लिए, बल्कि सांस्कृतिक अध्ययन के लिए भी आवश्यक है।

भाषा एक प्रमुख कारण है, जो कि क्षेत्रीय समाज और संस्कृति को प्रभावी रूप से व्यक्त करने का माध्यम बनती है। हरियाणवी भाषा में ताजगी और प्रामाणिकता होती है, जो दर्शकों को वास्तविक जीवन की स्थिति से जुड़ने में मदद करती है। हरियाणा के नाटक और एकांकी में विशेष रूप से प्राकृतिक और सहज शैली का पालन किया जाता है। ऐसे में यह नाटक न केवल मनोरंजन का साधन होते हैं, बल्कि एक सामाजिक सन्देश देने का भी कार्य करते हैं।

4. महत्त्व

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी का साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्त्व अत्यधिक है, क्योंकि ये हरियाणा की भाषा और संस्कृति को उजागर करते हैं, जिनमें भाषा, समाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक संरक्षण और साहित्यिक समृद्धि प्रमुख हैं। भाषाई महत्त्व के संदर्भ में, हरियाणा के नाटक और एकांकी में प्रयुक्त हरियाणवी भाषा और उसकी बोल-चाल की शैली समाज के सच्चे चित्रण को सामने लाती है। ये रचनाएँ साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण रूप को प्रस्तुत करती हैं, समाप्ति में, हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी का महत्त्व न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक प्रभावी हैं। ये नाटक समाज के विभिन्न पहलुओं को सामने लाकर बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाने का कार्य करते हैं, साथ ही हरियाणवी भाषा और संस्कृति को भी सम्मानित करते हैं।

5. उपसंहार

हरियाणा साहित्य अकादमी के नाटक और एकांकी ने न केवल हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, बल्कि ये हरियाणा की सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक मुद्दों और लोक जीवन को सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रभावी माध्यम भी बने हैं। इन नाटकों और एकांकी में प्रयुक्त भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभाव दर्शकों को न केवल मनोरंजन प्रदान करते हैं, बल्कि समाज की गहरी वास्तविकताओं और समस्याओं को समझने में मदद करते हैं। इस प्रकार, यह नाटक और एकांकी साहित्यिक रूप से समृद्ध हैं और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं।

संदर्भ सूची

1. हरियाणा के लोक नाटक
2. हरियाणवी एकांकी संग्रह
3. रामकृष्ण यादव के नाटक
4. हरियाणा के समकालीन नाटककारों की रचनाएँ
5. शर्मा, सुरेंद्र (2015). हरियाणवी साहित्य का इतिहास
6. सिंह, कृष्ण (2012). हिंदी नाटक और उसका समाजिक प्रभाव
7. यादव, राधेश्याम (2017). हरियाणा का नाट्य साहित्य
8. पांडे, प्रमिला (2019). भारतीय नाट्य कला में सामाजिक बदलाव
9. हिंदी नाट्य समीक्षा (2020), अवस. 14, पेनम 2, "हरियाणा के नाटकरू भाषा और समाज"
10. सांस्कृतिक शोध पत्रिका (2018), अवस. 25, "लोक नाटकों का सांस्कृतिक प्रभाव"
11. आधुनिक साहित्य (2021), अवस. 9, "हरियाणा के नाटकों में ग्रामीण जीवन का चित्रण"
12. समाज और साहित्य (2022), अवस. 18, "समाज में परिवर्तन के लिए नाटकों का प्रभाव"

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्राचीन भारत में जाति व्यवस्था, पारिवारिक जीवन और मूल्यों का अध्ययन

राहुल सोनी
रिसर्च स्कॉलर, मोनाड युनिवर्सिटी, हापुड़
email : sonyrahulmkr@gmail.com
mobile- 9457668688

प्राचीन भारत एक ऐसी सभ्यता थी जो समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं, आध्यात्मिक प्रथाओं और दार्शनिक प्रवचनों से भरी हुई थी। इसका समाज उन प्रणालियों में गहराई से निहित था जो सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक गतिशीलता और सामाजिक मूल्यों को नियंत्रित करती थीं। इनमें से, जाति व्यवस्था (वर्ण व्यवस्था), पारिवारिक जीवन की संरचना और मूल नैतिक मूल्यों ने सदियों से भारतीय समाज के पाठ्यक्रम को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभाई। ये तत्व न केवल परस्पर जुड़े हुए थे बल्कि प्राचीन भारतीय सभ्यता को रेखांकित करने वाले सामाजिक और धार्मिक ताने-बाने की नींव भी बने। भारत में जाति व्यवस्था, पारिवारिक जीवन और व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के आचरण को नियंत्रित करने वाले मूल्य प्राचीन भारतीय समाज को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण घटक हैं। जाति व्यवस्था, हालांकि अपनी अभिव्यक्तियों में विविध थी, लोगों को उनके काम और जन्म के आधार पर वर्गीकृत करती थी। पारिवारिक जीवन पदानुक्रम और कर्तव्य (धर्म) के सख्त नियमों और सत्य (सत्य), अहिंसा (अहिंसा) और धार्मिकता की अवधारणाओं द्वारा आकार दिए गए नैतिक कोड द्वारा निर्देशित था। यह लेख प्राचीन भारतीय समाज में इन तीन मौलिक तत्वों की जांच करता है, ताकि यह समझा जा सके कि वे किस प्रकार सह-अस्तित्व में थे, एक-दूसरे को प्रभावित करते थे, तथा सामाजिक-धार्मिक लोकाचार में योगदान देते थे।

प्राचीन भारत में जाति व्यवस्था

प्राचीन ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था के रूप में जानी जाने वाली जाति व्यवस्था एक सामाजिक वर्गीकरण थी जो लोगों को उनके व्यवसाय और समाज में भूमिका के आधार पर समूहों में विभाजित करती थी। समय के साथ, यह व्यवस्था कठोर, जन्म-आधारित और पदानुक्रमित हो गई और इसने सामाजिक व्यवस्था को परिभाषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चार वर्ण

प्राचीन जाति व्यवस्था ने समाज को चार मुख्य वर्णों (श्रेणियों) में वर्गीकृत कियारू

ब्राह्मण : पुरोहित वर्ग, धार्मिक अनुष्ठानों, शिक्षण और पवित्र ज्ञान के संरक्षण के लिए जिम्मेदार। ब्राह्मणों को सामाजिक पदानुक्रम में सर्वोच्च माना जाता था।

क्षत्रिय : योद्धा और शासक वर्ग। क्षत्रियों को राज्य की सुरक्षा और न्याय के प्रवर्तन का काम सौंपा गया था। वे सैन्य

सेवा और प्रशासन के लिए जिम्मेदार थे।

वैश्य : व्यापारी, कारीगर और किसान वर्ग। वैश्य व्यापार, कृषि और आर्थिक उत्पादन के विभिन्न अन्य रूपों में शामिल थे। उनकी भूमिका समाज की आर्थिक संपदा में योगदान देना था।

शूद्र : उच्च वर्गों की सेवा के लिए जिम्मेदार श्रमिक वर्ग। शूद्र नीच कार्य करते थे और विभिन्न व्यवसायों में काम करते थे जो अर्थव्यवस्था का समर्थन करते थे, लेकिन अक्सर उन्हें अन्य तीन वर्णों के समान अधिकार नहीं दिए जाते थे।

माना जाता है कि वर्ण व्यवस्था, अपने शुरुआती चरणों में, एक व्यक्ति के गुणों और कार्य (गुण और कर्म) पर आधारित थी। हालाँकि, समय के साथ, यह वर्गीकरण वंशानुगत हो गया, और व्यवस्था अधिक कठोर हो गई। इस कठोरता के परिणामों में अस्पृश्यता और सामाजिक अलगाव शामिल थे, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो चार वर्णों में से किसी में भी फिट नहीं होते थे, जिन्हें दलित या अछूत कहा जाता था।

जन्म-आधारित जाति व्यवस्था

जबकि वर्ण का प्रारंभिक वर्गीकरण अधिक तरल था, बाद के काल (विशेष रूप से वैदिक काल के बाद) तक, जाति व्यवस्था तेजी से जन्म-आधारित हो गई। लोग अपनी जाति में पैदा होते थे, और उनका जीवन और करियर उनकी जाति की स्थिति से पूर्व निर्धारित होता था। यह व्यवस्था समय के साथ और अधिक स्तरीकृत और भेदभावपूर्ण होती गई। जाति व्यवस्था भी जाति व्यवस्था के रूप में जानी जाती है, जिसने समाज को हजारों उप-जातियों में विभाजित कर दिया। प्रत्येक जाति के अपने नियम, रीति-रिवाज और विशेषाधिकार थे। समय के साथ, इन विभाजनों ने मौजूदा सामाजिक असमानताओं को मजबूत किया और एक ऐसा समाज बनाया जहाँ जातियों के बीच गतिशीलता बेहद सीमित थी।

जाति व्यवस्था की अक्सर दार्शनिकों, समाज सुधारकों और धार्मिक हस्तियों द्वारा आलोचना की जाती थी। शुरुआती आलोचनाएँ बुद्ध और महावीर की ओर से आईं, जिन्होंने जाति की परवाह किए बिना सभी मनुष्यों की समानता के लिए तर्क दिया। कबीर और गुरु नानक जैसे भक्ति संतों ने भी जाति-आधारित भेदभाव को खारिज किया और ईश्वर के समक्ष मानवता की एकता का उपदेश दिया। आधुनिक युग में, स्वामी विवेकानंद, डॉ. बी.आर. अंबेडकर और अन्य जैसे समाज सुधारकों ने जाति भेदभाव के उन्मूलन के लिए अभियान चलाया। इन प्रयासों के बावजूद, जाति व्यवस्था की विरासत भारतीय समाज को प्रभावित करती रही है, हालाँकि जाति-आधारित भेदभाव को खत्म करने के लिए कानूनी सुधार लागू किए गए हैं।

प्राचीन भारत में पारिवारिक जीवन

प्राचीन भारत में परिवार सामाजिक जीवन की आधारशिला था। यह न केवल आर्थिक और भावनात्मक समर्थन की इकाई थी, बल्कि संस्कृति, मूल्यों और धार्मिक प्रथाओं के प्रसारण के लिए एक केंद्रीय स्थान भी थी।

संयुक्त परिवार प्रणाली

प्राचीन भारत में, प्रमुख पारिवारिक संरचना संयुक्त परिवार प्रणाली थी। इस प्रणाली में कई पीढ़ियाँ एक ही छत के नीचे एक साथ रहती थीं, जिसमें सबसे बड़ा पुरुष (आमतौर पर पिता या दादा) परिवार का मुखिया होता था। संयुक्त परिवार प्रणाली सामूहिक जीवन, साझा संसाधनों और आपसी जिम्मेदारियों पर जोर देती थी। संयुक्त परिवार प्रणाली संसाधनों को एकत्रित करने की अनुमति देती थी और प्रत्येक परिवार के सदस्य को भावनात्मक और सामाजिक सहायता प्रदान करती थी। बुजुर्ग, विशेष रूप से कुलपति, युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करने और पारिवारिक मामलों की देखरेख करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

परिवार में महिलाओं की भूमिका

प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिकाएँ बहुआयामी थीं, लेकिन मुख्य रूप से घरेलू कर्तव्यों तक ही सीमित

थीं। उन्हें घर की देखभाल करने वाली, माँ और प्रबंधक के रूप में देखा जाता था। जबकि महिलाएँ ज्ञान प्राप्त कर सकती थीं और कुछ धार्मिक गतिविधियों में संलग्न हो सकती थीं, उनका प्राथमिक कर्तव्य अक्सर परिवार का प्रबंधन और बच्चों का पालन-पोषण करना माना जाता था। हालाँकि, प्राचीन भारत में महिलाओं को कुछ मामलों में स्वतंत्रता भी प्राप्त थी। कुछ महिलाएँ, विशेष रूप से उच्च जातियों में, शिक्षा प्राप्त करती थीं और बौद्धिक और आध्यात्मिक गतिविधियों में भाग लेती थीं। गार्गी और मैत्रेयी जैसी हस्तियाँ महिला विद्वानों के उदाहरण हैं जिनका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, जिनमें ब्राह्मण और उपनिषद शामिल हैं। ये ग्रंथ बताते हैं कि महिलाओं को बौद्धिक अन्वेषण का अधिकार था, हालाँकि ऐसी स्वतंत्रता विशिष्ट संदर्भों तक ही सीमित थी।

विवाह और सामाजिक मानदंड

प्राचीन भारत में विवाह को एक पवित्र संस्था माना जाता था। यह विभिन्न हिंदू धर्मग्रंथों, विशेष रूप से धर्मशास्त्रों में निर्धारित सख्त नियमों द्वारा शासित था। विवाह को एक सामाजिक कर्तव्य, वंश को आगे बढ़ाने का एक साधन और सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था सुनिश्चित करने के रूप में देखा जाता था। विवाह के कई रूप थे, जिनमें सबसे अधिक पूजनीय ब्रह्म विवाह (आपसी सहमति से विवाह) था, जहाँ दूल्हा और दुल्हन अपने परिवारों की स्वीकृति से एक-दूसरे को चुनते थे। गंधर्व विवाह (प्रेम विवाह) जैसे अन्य रूप मौजूद थे, लेकिन उन्हें कम औपचारिक माना जाता था। विवाह में एक महिला का स्थान महत्त्वपूर्ण था, और उसके कर्तव्य मुख्य रूप से परिवार के नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों के पालन की ओर निर्देशित थे। पतिव्रत धर्म की अवधारणा इस बात पर जोर देती है कि पत्नी से अपने पति के प्रति समर्पित और वफादार रहने की अपेक्षा की जाती है, अक्सर घर के भीतर धार्मिक समारोहों और अनुष्ठानों में अग्रणी भूमिका निभाती है।

प्राचीन भारतीय समाज में मूल्य

प्राचीन भारतीय समाज न केवल जाति और परिवार के सख्त नियमों द्वारा निर्देशित था, बल्कि एक नैतिक ढांचे में भी गहराई से समाया हुआ था। मूल मूल्य धर्म (धार्मिक कर्तव्य), कर्म (कार्य और उनके परिणाम), अहिंसा (अहिंसा) और सत्य (सत्य) पर आधारित थे।

धर्म और कर्म

प्राचीन भारत में धर्म की अवधारणा व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण के लिए केंद्रीय थी। धर्म नैतिक और नैतिक कर्तव्यों का प्रतिनिधित्व करता था, जो अक्सर किसी की जाति, जीवन के चरण और समाज में व्यक्तिगत भूमिका से प्रभावित होता था। इसने ईमानदारी और भक्ति के साथ अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने पर जोर दिया। कर्म, या कारण और प्रभाव का नियम, नैतिक ढांचे के लिए भी मौलिक था। इसने माना कि हर क्रिया, चाहे वह अच्छी हो या बुरी, इस जीवन या अगले जीवन में परिणाम लाएगी। इस सिद्धांत ने व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना पैदा की और नैतिक आचरण के अनुरूप निर्णय लेने में व्यक्तियों का मार्गदर्शन किया।

अहिंसा और सत्य

अहिंसा और सत्य के सिद्धांत प्राचीन भारतीय मूल्यों में अंतर्निहित थे, जो व्यक्तिगत व्यवहार और बड़े सामाजिक मानदंडों दोनों को प्रभावित करते थे। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और गांधीवादी विचारों की शिक्षाओं द्वारा प्रचारित अहिंसा, यह विश्वास था कि व्यक्ति को अपने कार्यों, भाषण या विचारों के माध्यम से दूसरों को नुकसान पहुंचाने से बचना चाहिए। इसी तरह, महाभारत और रामायण जैसे विभिन्न हिंदू ग्रंथों में सत्य का सम्मान किया गया, जहाँ सत्य और ईमानदारी को आदर्श मानव चरित्र का अभिन्न अंग माना गया। सत्य बोलने और नैतिक आचरण के पालन को व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण दोनों के लिए

महत्त्वपूर्ण माना जाता था।

जीवन के चार उद्देश्य (पुरुषार्थ)

प्राचीन भारतीय दर्शन ने मानव जीवन के चार प्राथमिक लक्ष्यों पर जोर दिया, जिन्हें पुरुषार्थ के रूप में जाना जाता हैरू

धर्म - धार्मिकता, नैतिक जीवन।

अर्थ - धन और भौतिक समृद्धि।

काम - इच्छाओं का आनंद और संतुष्टि।

मोक्ष - जन्म और मृत्यु (संसार) के चक्र से मुक्ति।

ये लक्ष्य व्यक्तियों को संतुलित जीवन की खोज में मार्गदर्शन करते थे, जहाँ नैतिक अखंडता, भौतिक सफलता, व्यक्तिगत सुख और आध्यात्मिक पूर्ति को सामंजस्य में प्राप्त किया जाना था।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में जाति व्यवस्था, पारिवारिक जीवन और मूल्य जटिल रूप से जुड़े हुए थे, जो एक जटिल सामाजिक संरचना की नींव रखते थे। जाति व्यवस्था ने लोगों को उनकी भूमिकाओं के आधार पर वर्गीकृत किया, जबकि पारिवारिक जीवन सामूहिक जीवन और नैतिक आचरण पर जोर देता था। धर्म, कर्म, अहिंसा और सत्य के मूल्यों ने व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक मानदंडों दोनों को रेखांकित किया, जिस तरह से लोग एक-दूसरे और अपने आस-पास की दुनिया के साथ बातचीत करते थे।

संदर्भ सूची

1. Ali, Syed. "Collective and Elective Ethnicity: Caste among Urban Muslims in India," Sociological Forum, 2002.
2. Chandra, Ramesh. Identity and Genesis of Caste System in India, New Delhi: Gyan Books, 2005.
3. Ghurye, G.S. Caste and Race in India, Mumbai: Popular Prakashan, 1996.
4. Perez, Rosa Maria. Kings and Untouchables: A Study of the Caste System in Western India, Hyderabad: Orient Blackswan, 2004.
5. Reddy, Deepa S. "The Ethnicity of Caste," Anthropological Quarterly, 78:3 (Summer 2005.
6. Dumont, L. Homo hierarchicus: The caste system and its implications. University of Chicago Press, 1957.
7. Marriott, M, Little communities in an indigenous civilization. University of Chicago Press, 1955.
8. Ghurye, G. S. Caste and race in India. Popular Prakashan, 1961.
9. Eaton, R. M. Remembering the Raj: South Asia in the construction of Imperial Britain, University of Chicago Press, 2001.
10. Census of India. Caste demographics in India: 2011 Census report. Government of India, 2011.
11. National Crime Records Bureau (NCRB). Annual Report on Crimes in India. Government of India, 2015.
12. Mandal Commission. Report of the Second Backward Classes Commission (Mandal Commission). Government of India, 2016.
13. Ambedkar, B. R. The problem of the rupee: Its origin and its solution. Thacker and Co, 1948.
14. Guha, R. 'Gandhi before India. Vintage Books, 2015.
15. Omvedt, G. 'Dalits and the democratic revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. Sage Publications, 2006.
16. Nirpendra Kumar Dutta, 'Origin and Development of Caste in India Volume I' Kalpaj Publications, 2017.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

शासन और धर्म : प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों की समकालीन उपादेयता

प्रभात कुमार ओझा
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय सैदाबाद, प्रयागराज

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता अपने भीतर अनगिनत आयाम समेटे हुए एक विशाल विरासत है, जिसमें राजनीति और धर्म का अंतर्संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक, राज्य और धर्म के मध्य संतुलित समन्वय भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का आधार स्तंभ रहा है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों, जैसे वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र इत्यादि, में ऐसे अनेक सिद्धांत मिलते हैं जो दर्शाते हैं कि राज्य सत्ता और धार्मिक मूल्यों के मध्य स्वस्थ संतुलन समाज के नैतिक एवं वैधानिक विकास के लिए आवश्यक होता है। यही कारण है कि "धर्म" शब्द को यहाँ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित न रखकर, बल्कि व्यापक नैतिक मूल्य व्यवस्था के रूप में समझना उचित है। वर्तमान लोकतांत्रिक परिवेश में, जहाँ शासन की सफलता विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों के साझे योगदान पर निर्भर करती है, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन कई मायनों में आज भी प्रासंगिक है। समतावादी व्यवस्था, उत्तरदायी प्रशासन, जनभागीदारी तथा नैतिक आदर्शों का समावेश, ऐसे तत्व हैं जो आधुनिक राज्य की नींव मजबूत करते हैं। अतः यह शोधपत्र "शासन और धर्म : प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों की समकालीन उपादेयता" के आलोक में यह पड़ताल करेगा कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय दर्शन में निहित राजनीतिक प्रतिमान आधुनिक भारतीय लोकतंत्र और लोक प्रशासन को नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

मुख्य शब्द : धर्म, राज्य, नैतिकता, अर्थशास्त्र, राजधर्म, वैदिक साहित्य, लोककल्याण, लोकतंत्र

परिचय : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में धर्म और शासन

भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में धर्म और शासन का संबंध अत्यंत गहरा रहा है। "धर्म" शब्द, मूलतः 'धृ' धातु से निकला है, जिसका अर्थ है "धारण करना" या "संभालना"। प्राचीन भारतीय चिन्तन में धर्म केवल पूजा-पद्धति या धार्मिक आस्था का पर्याय नहीं है, बल्कि एक व्यापक नैतिक-सामाजिक सिद्धांत है जो समाज और व्यक्ति, दोनों को मर्यादित जीवन जीने की प्रेरणा देता है। राज्य के संदर्भ में धर्म की भूमिका राजधर्म के रूप में परिभाषित होती है, जो राजा को यह निर्देश देती है कि उसे प्रजा के साथ कैसा आचरण करना चाहिए और राज्य की नीतियाँ किस प्रकार लोककल्याण पर केंद्रित हों। प्राचीनकाल में, वैदिक साहित्य से लेकर महाकाव्यों जैसे रामायण और महाभारत तक, धर्म के सिद्धांतों को शासन-व्यवस्था की आधारशिला माना गया। इन ग्रंथों में धर्म की चर्चा नैतिकता (एथिक्स), समाज के प्रति कर्तव्य, लोकहित और न्याय के रूप में मिलती है। महाभारत में वर्णित "राजधर्म" इस बात पर जोर देता है कि राजा का प्रथम दायित्व प्रजा के कल्याण के

प्रति होना चाहिए। इसी तरह, रामायण के 'राम-राज्य' की अवधारणा भी लोकहित, मर्यादा और दंड-विधि के संतुलित उपयोग पर बल देती है, जहाँ धार्मिक मूल्यों के आधार पर राज्य को संचालित किया जाता है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और दंडनीति

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के सन्दर्भ में यदि हम किसी एक ग्रंथ की बात करें, जो एक व्यवस्थित शास्त्रीय ग्रंथ की तरह राज्य-व्यवस्था और नीति-निर्माण पर प्रकाश डालता है, तो वह है कौटिल्य (चाणक्य) का अर्थशास्त्र जिसमें राज्य के विभिन्न अंगों जैसे वित्त, न्याय, सुरक्षा, कृषि, वाणिज्य आदि विषयों पर विचार करते हुए स्पष्ट किया कि शासक का प्रमुख उद्देश्य प्रजा के हित में काम करना होना चाहिए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में "दंडनीति" पर विशेष बल दिया गया है। दंड का अर्थ मात्र "शारीरिक दंड" नहीं है, बल्कि यह कानून के पालन के लिए स्थापित अनुशासन प्रणाली को दर्शाता है। दंडनीति के अंतर्गत, न्यायालयों की स्थापना, भ्रष्टाचार का उन्मूलन, कर-व्यवस्था का नियमन, तथा अपराध नियंत्रण जैसी बातों को शामिल किया गया है। यहाँ धर्म का अर्थ उस नैतिक मूलाधार से है जो शासक और प्रजा, दोनों को निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण आचरण करने के लिए प्रेरित करता है।

मनुस्मृति व अन्य स्मृतियाँ : राज्य के नैतिक सिद्धांत

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मनुस्मृति एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जहाँ सामाजिक तथा वैधानिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का विवरण मिलता है। यद्यपि आधुनिक समय में मनुस्मृति का कई आधारों पर आलोचनात्मक विश्लेषण हुआ है, किंतु राज्य की भूमिका की दृष्टि से इसमें कुछ सार्वकालिक सिद्धांत निहित हैं। उदाहरणार्थ, मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा को समान भाव से न्याय करना चाहिए, तथा उसकी नीतियाँ लोकहित में होनी चाहिए। अन्य स्मृतियों और धर्मशास्त्रों में भी राज्य और धर्म के पारस्परिक संबंध को भिन्न-भिन्न ढंग से विश्लेषित किया गया है। इन प्राचीन स्रोतों में शासन का मुख्य उद्देश्य लोक-कल्याण बताया गया है, जिसका मार्ग सदाचार और नैतिक मूल्यों से होकर जाता है। अतः धर्म, एक मानक या रेफरी की भूमिका निभाता है, जो शासक और जनता दोनों को अनुशासित रखता है। शासन के लिए धर्म का यह अर्थ नहीं होता कि शासक किसी विशेष धार्मिक पद्धति को मानने के लिए प्रजा को बाध्य करे, बल्कि इसका आशय लोक-कल्याण के मूल्यों, न्याय और समानता जैसे आदर्शों का पालन सुनिश्चित कराना होता है।

प्राचीन भारतीय राज्य की संरचना

प्राचीन भारतीय राजनीतिक संरचना, "राजा-परिषद-प्रजा" की त्रिक प्रणाली पर आधारित थी। राजा, या शासक, नीति-निर्माण तथा प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था; परिषद् एक सलाहकार निकाय थी जो राज्य-व्यवस्था, कर-व्यवस्था, सैन्य शक्ति इत्यादि के विषय में राजा को सलाह देती थी; और प्रजा राज्य की आधारभूत शक्ति थी। धार्मिक ग्रंथों में धर्म का उपयोग एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में किया जाता था, जो राजा और परिषद् दोनों के नैतिक आचरण को नियंत्रित करता था। "धर्म" इस संरचना में एक संतुलनकारी शक्ति थी। यदि राजा किसी वजह से अत्याचारी होता या उसके निर्णय लोकहित के विरुद्ध होते, तो धर्मगुरु और विद्वान परिषद् के माध्यम से उसे धर्मसंगत मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते। यह व्यवस्था लोकतंत्र जैसी आधुनिक संकल्पनाओं से भिन्न होते हुए भी, नैतिकता और जनहित को शीर्ष प्राथमिकता देती थी।

धर्म और शासन का आधुनिक अर्थ संदर्भ

समय के साथ, भारतीय समाज और राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुए। मौर्य, गुप्त, मुगल और ब्रिटिश शासन तक विभिन्न शासकों ने अपने-अपने तरीकों से राज्य-व्यवस्था को संचालित किया। आधुनिक समय में, स्वतंत्रता के पश्चात् भारत एक गणराज्य के रूप में उभरा, जहाँ धर्मनिरपेक्षता (सेक्युलरिज्म) राज्य का आधार स्तंभ बनी। भारतीय संविधान में शासन

को किसी एक धार्मिक पद्धति से नहीं, बल्कि बहुलतावादी दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है। "धर्मनिरपेक्षता" का भारतीय संदर्भ पश्चिमी अर्थ में "धर्म-विमुखता" न होकर "सर्व-धर्म-समभाव" की अवधारणा से जुड़ा है। अर्थात् राज्य किसी एक धर्म का पक्ष नहीं लेता, अपितु सभी धार्मिक समूहों के प्रति समदृष्टि रखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्राचीन भारतीय चिंतन में जहाँ धर्म को लोकहित और न्याय का संवाहक माना गया, वहीं आधुनिक भारतीय राज्य भी संवैधानिक मूल्यों के माध्यम से सामाजिक न्याय, समानता और स्वतंत्रता को सुदृढ़ करता है।

शोध प्रविधि

इस शोध में गुणात्मक व ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, एवं अन्य प्रासंगिक साहित्यिक स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन कर, उनके राजनीतिक सिद्धांतों का सार निकाला गया है। समकालीन संदर्भ को समझने के लिए संविधान, विधायी ढाँचे, तथा विभिन्न सरकारी रिपोर्टों व विद्वान लेखकों के लेखों का अध्ययन किया गया। इस शोध में फुटनोट के माध्यम से हर महत्त्वपूर्ण स्रोत की पहचान की गई है, तथा शोध निष्कर्षों को तर्कसंगत और प्रमाणिक सिद्ध करने के लिए प्रामाणिक ग्रंथों और आधुनिक शोध-आलेखों का भी सन्दर्भ लिया गया है।

साहित्य समीक्षा

वैदिक साहित्य और राजधर्म की अवधारणा

प्राचीन भारतीय साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है। इन वेदों में सीधे तौर पर राजनीति पर विस्तृत चर्चा नहीं मिलती, किंतु आचार-विचार, समाज-व्यवस्था और देवताओं के संगठन के माध्यम से तत्कालीन शासन की झलक दिखाई देती है। वेदों में धर्म को सत्य, ऋत और न्याय के रूप में परिभाषित किया गया है। धर्म और शासन का परस्पर संबंध इस बात में निहित था कि राजा या जननायक को सत्य-धर्म का पालन करना चाहिए, और प्रजा को भी राजा का समर्थन धर्म-संगत और न्यायोचित विषयों में ही करना चाहिए।

उपनिषद वेदों के दार्शनिक भाष्य हैं, जहाँ आध्यात्मिकता, नैतिकता और ज्ञान की प्रधानता है। इन ग्रंथों में राजनीति का प्रत्यक्ष उल्लेख कम ही है, परंतु नीति, न्याय और सदाचार की विस्तृत व्याख्या मिलती है। दार्शनिक दृष्टि से, एक अच्छे शासक का मानक यह बताया गया है कि वह अहंकार से मुक्त होकर जनता की भलाई के लिए कार्य करे।

महाकाव्यों में राज्य और धर्म

रामायण और महाभारत भारत के प्रमुख महाकाव्य हैं, जहाँ राज्य-व्यवस्था, पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक जीवन का विस्तृत विवरण है। रामायण में वर्णित 'राम-राज्य' एक आदर्श राज्यव्यवस्था का रूप प्रस्तुत करता है, जहाँ राजा तथा प्रजा दोनों सुखी और समृद्ध रहते हैं। इस व्यवस्था की सफलता का प्रमुख कारण राजा राम का 'राजधर्म' के प्रति समर्पण है। वह अपने निजी हितों से ऊपर उठकर प्रजा के कल्याण को प्राथमिकता देते हैं।

दूसरी ओर, महाभारत में विस्तृत चर्चा मिलती है कि कैसे शासन की गलत नीतियों के कारण विनाशकारी युद्ध छिड़ सकता है। "शान्ति पर्व" में राजधर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि एक सफल राजा वही है जो न्यायपूर्ण हो, धर्म का पालन करे और प्रजा के सुख-दुःख का खयाल रखे। राज्य में व्यवस्था बनाए रखने के लिए दंड का होना आवश्यक माना गया है, परंतु दंड भी धर्म-सिद्धांतों के अनुकूल होना चाहिए।

अर्थशास्त्ररू प्रशासनिक दक्षता और नैतिकता का समन्वय

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्रशासनिक दक्षता, वित्तीय प्रबंधन, सैन्य संगठन और वैदेशिक नीति पर विस्तृत विवरण

प्रदान किया है। कौटिल्य का दृष्टिकोण अत्यधिक व्यावहारिक माना जाता है, क्योंकि उन्होंने समसामयिक राजनीतिक चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए सिद्धांत प्रतिपादित किए। उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार को रोकने के लिए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि राजा को सभी अधिकारियों पर कड़ी निगरानी रखनी चाहिए, तथा भ्रष्टाचार की स्थिति में कठोर दंड दिया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, कौटिल्य धर्म को नैतिकता के आधार स्तंभ के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार, एक प्रभावी शासन व्यवस्था वही है जो प्रजा को सुरक्षा, न्याय और सुशासन प्रदान कर सके। यदि राजा धर्म से विमुख होकर अत्याचार करेगा, तो अंततः वह प्रजा के विद्रोह का सामना करेगा, जिससे राजसत्ता का पतन हो सकता है। इस प्रकार, कौटिल्य धर्म को केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक मार्गदर्शक सिद्धांत मानते हैं।

मनुस्मृति और अन्य स्मृतियाँ

मनुस्मृति में वर्णित सामाजिक एवं कानूनी प्रावधान आधुनिक संवेदनाओं से मेल नहीं खाते, विशेषतः जाति-व्यवस्था और लैंगिक भेदभाव के संदर्भ में इसकी व्यापक आलोचना हुई है। फिर भी, राज्य और उसकी संरचना को लेकर इसमें उल्लेखनीय बातें हैं। मनु के अनुसार, राजा को सत्य और धर्म का पालन कर न्याय स्थापित करना चाहिए। अन्य स्मृतियों में भी, राज्य के संचालन के विविध पहलू मिलते हैं, जैसे कि याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति इत्यादि। इनमें दंडविधान, विवाह, परिवार, उत्तराधिकार और संपत्ति-निपटान संबंधी विधानों के साथ-साथ राज्य के अधिकारों और कर्तव्यों का भी उल्लेख है। यद्यपि इनमें वर्णित कुछ व्यवस्थाएँ आधुनिक काल में अप्रासंगिक हो गई हैं, लेकिन कानून के शासन, न्याय की अनिवार्यता और राजा के लोकहितक दायित्व जैसे सिद्धांत आज भी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

आधुनिक भारतीय संविधान और धर्म-निरपेक्षता

भारतीय संविधान निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्षता को अपनाते हुए राज्य की सत्ता को किसी एक धार्मिक मत अथवा संप्रदाय से स्वतंत्र रखा है। डॉ. बी.आर. आम्बेडकर ने संविधान में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को समावेशित करते समय यह सुनिश्चित किया कि प्राचीन भारतीय दर्शन के कई नैतिक मूल्य आधुनिक रूप में पुनर्स्थापित हों। समता एवं न्याय की अवधारणाएँ प्राचीन ग्रंथों में भी प्रतिपादित थीं, लेकिन उन्हें आधुनिक युग के अनुरूप लोकतांत्रिक ढाँचे में ढाला गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ "पंथनिरपेक्षता" भी है, जहाँ सभी धार्मिक पंथों को एक समान माना जाता है। यह दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय "सर्वधर्म समभाव" की विचारधारा से मिलता-जुलता है। इसी कारण, भारतीय विधायिका और कार्यपालिका के ढाँचे में कई स्थानों पर धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक बहुलता को संवैधानिक संरक्षण दिया गया है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में "धर्म" की अवधारणा इतनी व्यापक थी कि वह शासन-व्यवस्था के प्रत्येक अंग को नैतिक तथा व्यवहारिक दिशा प्रदान करती थी। वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र और स्मृतियों सहित अन्य प्राचीन ग्रंथों में निरंतर इस बात पर जोर मिलता है कि राज्य की सफलता राजा और प्रजा, दोनों के कर्तव्यों तथा अधिकारों के संतुलन पर निर्भर है। आज, जब आधुनिक लोकतंत्र में सत्ता का केंद्रीकरण अपेक्षाकृत कम होता जा रहा है और नागरिक अधिकारों की महत्ता बढ़ रही है, तब भी प्राचीन भारतीय सिद्धांतों की प्रासंगिकता बनी हुई है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में धर्म का अर्थ किसी एक धार्मिक संप्रदाय का समर्थन करना नहीं है, बल्कि नैतिकता, न्याय और सत्यता को प्रोत्साहित करना है। आज के समाज में विभिन्न धार्मिक समुदायों का सह-अस्तित्व है, और आधुनिक राज्य उन्हें संवैधानिक रूप से सुरक्षा प्रदान करता है। इसलिए, धर्मनिरपेक्षता की आधुनिक परिभाषा के साथ भी प्राचीन "धर्म" का यह रूप साम्य रखता है। यदि हम "धर्म" को सार्वभौमिक नैतिकता और कर्तव्य के रूप में समझें, तो यह आज के बहुलतावादी

समाज के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों का समकालीन उपादेयता में योगदान महत्त्वपूर्ण है। वे हमें याद दिलाते हैं कि शासन केवल शक्ति-प्रदर्शन या आर्थिक वृद्धि तक सीमित न रहे, बल्कि उसे सामाजिक नैतिकता, सांस्कृतिक बहुलता और मानवतावादी दृष्टिकोण का संवाहक होना चाहिए। नैतिक नेतृत्व, न्यायिक व्यवस्था और लोककल्याण की भावना, ये सभी तत्व प्राचीन चिंतन से वर्तमान लोकतंत्र को दिशा दे सकते हैं। फलस्वरूप, आधुनिक नीति-निर्माण की जटिल चुनौतियों के समाधान के लिए भी हमें अपने बौद्धिक और सांस्कृतिक स्रोतों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. महाभारत, शान्ति पर्व (संस्कृत पाठ एवं हिंदी अनुवाद), गोपाल नारायण एंड कंपनी प्रकाशन।
2. कौटिल्य, अर्थशास्त्र (संस्कृत पाठ एवं हिंदी अनुवाद), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
3. मनुस्मृति (संस्कृत पाठ एवं टीका), चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
4. आर.एस. शर्मा, प्राचीन भारत में राज्य और समाज, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. भारत का संविधान (Constitution of India), भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. शिवकुमार, वी., "लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन", भारतीय राजनीति पत्रिका, खंड 12, अंक 3, 2018
7. डॉ. के. रंगनाथन, "लोक नियंत्रण और प्रशासनिक उत्तरदायित्व", भारतीय प्रशासनिक समीक्षा, खंड 15, अंक 2, 2019
8. ऋग्वेद (संस्कृत पाठ एवं हिंदी अनुवाद), लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग।
9. उपनिषद (संक्षिप्त व्याख्या), अर्चना प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. तुलसीदास, रामचरितमानस (संपादित संस्करण), गीताप्रेस गोरखपुर।
11. महाभारत, शान्ति पर्व (व्याख्यात्मक संस्करण), साहित्य सदन, इलाहाबाद।
12. चंद्रशेखरन, पी., "कौटिल्य की राजनीतिक विचारधारा और इसका आधुनिक प्रासंगिकता", इतिहास समीक्षा, खंड 20, अंक 1, 2020
13. याज्ञवल्क्य स्मृति (संस्कृत पाठ एवं हिंदी व्याख्या), चौखम्बा पब्लिकेशन, वाराणसी।
14. आम्बेडकर, बी.आर., संविधान निर्माण में विचारधारा, समता प्रकाशन, नागपुर।
15. प्रेमचंद, ए.के., "धर्म और सत्ता का द्वंद्वरू प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण", समाज विज्ञान शोध पत्रिका, खंड 25, अंक 4, 2021
16. सुनील खिलनानी, The Idea of India (हिंदी अनुवाद), पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली।
17. शर्मा, अरविंद, "राजधर्मरू एक पुनर्व्याख्या", सांस्कृतिक विमर्श, खंड 11, अंक 2, 2017

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बोहल की कविताएँ : एक अवलोकन

डॉ. सरला जांगिड़
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
हिन्दुस्तान कॉलेज ऑफ ऑर्ट्स एंड साइंस, कोयम्बतूर

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः,
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।"

(श्रीमद्भगवत गीता के द्वितीय अध्याय, संख्या योग का श्लोक नंबर 23)

आत्मा को शस्त्र काट सकते हैं, ना अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु उसे सुखा सकती है। यह श्लोक आत्मा के अमर और अविनाशी स्वरूप का वर्णन करता है। आत्मा अमर है और फिर किसी भौतिक साधन से इसका नाश नहीं किया जा सकता। मुझे डॉ. नरेश कुमार सिहाग की पुस्तक 'बोहल की कविताएं' पढ़ने का सौभाग्य मिला। डॉ. नरेश कुमार जी किसी परिचय के मोहताज नहीं है, वह अपने आप में अद्वितीय प्रतिभा है। जैसे हमारा भारत देश भिन्नताओं में एकता समाए हुए है उसी तरह उन्होंने इस पुस्तक में अपने विभिन्न भावों, विचारों, मानवीय मूल्य, सभ्यता और संस्कृति को बहुत ही सहज ढंग से पाठकों को वर्ण्य-विषय दिया है।

मुझे सबसे ज्यादा उनके दार्शनिक विचारों ने प्रभावित किया है। यही कारण है कि मैंने अपने इस अवलोकन की शुरुआत गीता के श्लोक से की। आपके इस कविता संग्रह में 'अविनाशी है', 'मैं और आत्मा', 'क्योंकि तुम ईश्वर हो', 'आस्था', 'कुमार्ग पर न जाऊं', 'परमात्मा से उम्मीद', 'मृग और मृगछाला' आदि में भी आत्मा के अविनाशी रूप को स्वीकारा है–

'सबमें वही शाश्वत आत्मा, चेतन स्वरूप है विराजमान।'

श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को कर्म करने का जो उपदेश दिया, आपके विचारों में वही पारंपरिकता एवं मूल्यों की छाप है। 'कर्म प्रधान' कविता में इसी संदर्भ को दर्शाया गया है–

'कर्म करो नित्य समझकर, जीवन जिए समझकर।'

कर्म योगी बनना मनुष्य जीवन की सफलता की पहली सीढ़ी है। नियत कर्म में रत रहकर ही मनुष्य अपनी इच्छित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। कर्म को महत्त्व देकर डॉक्टर नरेश जी ने जीवन में सुख और दुख की परिभाषा को भी खत्म कर दिया है। दार्शनिकता और यथार्थवाद दोनों पहलुओं के बारे में बात करना और आसान शब्दों में कहना वह अपने आप में एक अनूठी कला है। 'सुख मिलता है' कविता की पंक्तियाँ-

"सुख मिलता है मनोदशा की स्थिति से
तब जाकर सुख का एहसास होता है स्थिति से।"

आपके विचारों में सुख और दुख सिर्फ मानव जनित सोच है। अगर मनुष्य दुख को भी सुख मान ले तो कभी दुख

की स्थिति को जानेगा ही नहीं। ईश्वर को सुमिरन करना या नाम जप से पाया जा सकता है। मनुष्य की इच्छा भौतिक जगत की सुखों की चाहत नहीं, बल्कि उसकी आत्मा को सुमिरन रुपी किरण चाहिए, ताकि अंधकार रूपी जीवन में उस ईश्वर की उपस्थिति का भान होता रहे।

आपने 'आस्था-विश्वास', 'मनुष्य की सकारात्मक सोच', 'सभ्यता और संस्कृति', 'परिश्रम, सब बराबर हैं', 'उच्चादर्श' आदि कविताओं में जीवन के छोटे- छोटे पहलुओं पर चर्चा की है। आपने बताया कि मानव के अन्दर का विश्वास इतना दृढ़ होना चाहिए, जिससे मनुष्य अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं को पार करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंचे।

डॉ. नरेश जी ने ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों की बात कही है। ईश्वर के सगुण रूप की छवि को हृदय में धारण करके उसके निर्गुण स्वरूप को अपने चारों पर प्रकृति में देखना।

तुम ईश्वर हो निराकार साकार
हर स्वरूप में
मुझे है नहीं कोई शंका
मेरे हृदय में भी

आपने मौन को नहीं, विचारों की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। विचारों की अभिव्यक्ति होने से हृदय में चल रहे विचारों और भावों का पता चलता है, वहीं दूसरी तरफ मौन की स्थिति को तब ही महत्त्वपूर्ण माना है, जब मनुष्य की मौन के महत्त्व को जाने।

हमारी भारतीय संस्कृति बहुत गौरवशाली है। डॉ. नरेश जी ने मानव के अस्तित्व की मूल जड़ 'संस्कारों' पर अपनी लेखनी चलाई है। संस्कार सिर्फ पारिवारिक या सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि एक ऐसा स्तंभ हैं जो व्यक्तित्व को संवारने और समाज को बेहतर बनाने में सहायक होते हैं। आपकी रचनाएँ न केवल पढ़ने में मनोहर हैं, बल्कि वे एक सकारात्मक दिशा में सोचने और कार्य करने के लिए प्रेरित भी करती हैं। ऐसे रचनाकार के विचार निश्चित रूप से समाज में जागरूकता और नैतिक सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। मनुष्य को अपनी उपस्थिति सूरज की तरह करनी है ताकि उसके द्वारा प्रदत प्रकाश में सबका जीवन आनंदित हो जाए। जीवन को आदर्शों को आधार मिले तो जीवन के लिए और संस्कृति के लिए गौरव है।

आपने सामान्य जीवन की बहुत छोटी सी चीज़ पराली को कैसे लोकतंत्र तक पहुँचाया- ये आपकी लेखन क्षमता और अद्भुत सोच को दर्शाता है। आपने प्रकृति के परिवर्तन, राजनीति पर व्यंग्य, घर से लेकर आत्मा तक की साफ़ - सफाई की गद्य के माध्यम से नहीं, बल्कि सरल, सहज और सुगम्य कविताई भाषा के जरिए पाठकों को रसास्वादन करवाया है।

आपने मनुष्य के उत्तम चरित्र निर्माण हेतु 'दोहरा चरित्र', 'ईमानदारी', 'समर्पण', 'सच्चाई' जैसी कविताओं की रचना की। आपकी रचनाएँ अत्यंत प्रेरणादायक और भावपूर्ण हैं। इन कविताओं में न केवल समाज के नैतिक आधार को प्रस्तुत किया है, बल्कि मानवता के उन अदृश्य सूत्रों को उजागर किया है, जो समाज को एकजुट और समृद्ध बनाते हैं। संस्कारों का मूल्य और मानवीय मूल्यों की आवश्यकता को बेहद संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है, जो हमें अपने आचरण और विचारधारा पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित करता है। समय के महत्त्व पर आपका दृष्टिकोण जीवन की क्षणभंगुरता को समझाते हुए प्रत्येक क्षण को सार्थक बनाने की प्रेरणा देता है। आपकी कविताओं में गहरी सोच, सामर्थ्य और आदर्श का समावेश है, जो पाठकों को न केवल आत्मचिंतन करने के लिए मजबूर करता है, बल्कि उन्हें जीवन के प्रति एक नई दृष्टि और दिशा प्रदान करता है। आपकी रचनाओं में शब्दों की शक्ति और विचारों की गहराई दोनों का अद्भुत संगम देखने को मिलता है, जो समाज में सकारात्मक बदलाव और व्यक्तिगत उत्कर्ष की ओर अग्रसर करने में सक्षम हैं।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

लोक की अवधारणा और लोकसाहित्य

डॉ. आर. के. वर्मा
सहा. प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
शासकीय दाऊ कल्याण सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बलौदा बाजार (छ.ग.)
मो.नं. - 9406019833, मेल आईडी - dr.rajverma@yahoo.com

प्रस्तावना

धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि उपलब्धियों एवं उनसे गुजरते जीवनों का प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। नाट्य शालाओं और पद्य के माध्यम से प्रारंभ होने वाला यहाँ का साहित्य युगीन प्रभावों को आत्मसात करता हुआ प्रगति की गति के साथ अपने को जोड़कर निरंतर गतिशील रहा है।

विभिन्न क्षेत्रों से घिरे होने के कारण सीमांत प्रदेशों की भाषा-बोली और आचार विचारों का प्रभाव भी इस अंचल के साहित्य पर है। छ.ग. में लोक साहित्य का अक्षय भंडार है। अप्रकाशित साहित्य की मात्रा भी यहाँ कम नहीं है। अभी तक इस बिखरे अप्रकाशित साहित्य का उपयोग लोग व्यक्तिगत रूप से करते थे। परंतु जिस प्रकार उसका उपयोग किया जाना चाहिए था वह नहीं हो पाया। वह अभी भी उपेक्षित है। अप्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध समृद्ध और वैविध्यपूर्ण लोकसाहित्य के संकलन एवं प्रकाशन के बाद ही यहाँ की साहित्यिक प्रतिभा का समुचित आकलन संभव होगा।

लोक शब्द अर्थ एवं परिभाषा

लोक शब्द संस्कृत के लोकदर्शन धातु के धञ प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है देखना जिसका लटलकार में एक वचन का रूप देखते हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। व्यवहार में लोक शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण जनमानस के लिए होता है। शब्दकोशों में लोक शब्द के अर्थ हैं प्रदेश, संसार, समाज, जन आदि पारिभाषिक रूप में इसका प्रयोग अंग्रेजी के फोक के पर्याय के रूप किया जाता है। अंग्रेजी में फोक शब्द का प्रयोग अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित के लिए किया जाता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक शब्द के अर्थ को ग्राम्य नहीं मानते बल्कि नगरों और गाँवों तथा विस्तृत समुची जनता को लोक मानते हैं जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार उन्होंने पोथियों को नहीं माना है। हिंदी में लोक अर्थात फोक का पर्याय ग्राम जन तथा लोक रूप में भी प्राप्त होता है कुछ विद्वानों ने लोक के स्थान पर ग्राम अथवा जन शब्द का प्रयोग किया है। सामान्य अर्थ में लोक शब्द संसार की अभिव्यक्ति करता है। सामान्य अर्थ में लोक साहित्य का अभिप्राय उस युगीन साहित्य से लिया जाता है, रचयिता अज्ञात होता है और जिसे आधुनिकता से पृथक रहने वाला समाज अपनी वस्तु मानता है।

परिभाषा

(1) डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं, वे लोक होते हैं।"

(2) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य है जो लोक की युग युगीन वाणी साधना में समाहित रहती है तथा जिसमें लोकमानस प्रतिबिंबित रहता है।

(3) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित चलित और प्रभावित करती है वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है।

यदि लोक संस्कृति की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से की जाये तो लोकसाहित्य को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए। यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक साहित्य उसका एक अवयव है। लोक संस्कृति की व्यापकता जनजीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है। परंतु लोक साहित्य जनता के गीतों कथाओं, गाथाओं, मुहावरों तक ही सीमित है। लोक साहित्य भले ही लोक वार्ता का एक अंग है किन्तु उसकी सीमा का विस्तार दूर - दूर तक है।

लोक साहित्य का सामान्य परिचय

यद्यपि आजकल लोक साहित्य में ग्रंथों का निर्माण द्रूत गति से हो रहा है। फिर भी इसका अलिखित साहित्य इसके लिखित साहित्य से परिणाम में बहुत ही अधिक है। साहित्य से हमारा तात्पर्य उस लोक साहित्य से है जो अभी तक लिपि की कारा में बद्ध नहीं किया गया है।

इस साहित्य को हम निम्न लिखित पांच वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :-

1. लोकवार्ता (फोकलोर)
2. लोक गीत (फोक सांगस)
3. लोक गाथा (फोक बैलेडस)
4. लोक कथा (फोक टेल्स)
5. लोक नाट्य (फोक ड्रामा)
6. लोक सुभाषित (लोक सेइंग्स)

लोकवार्ता

लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द फोकलोर (थ्वसासवतम) का हिंदी रूपांतर मान लिया गया है। हिंदी में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने किया था। लोकवार्ता शब्द की व्याप्ति के संबंध में उनका कहना है कि - "लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन-जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पुरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है और लोकवार्ता का संबंध भी उन्हीं के साथ है।"[1]

लोक गीत

लोक गीत वे गीत हैं जिन्हें सामान्य जनता अपने कण्ठ का हार बनाये रखती है ये गीत स्त्रियों तथा पुरुषों द्वारा समान रूप से गाये जाते हैं। संस्कार संबंधी गीत स्त्रियों की संपत्ति है और ऋतु तथा जाति संबंधी गीतों पर पुरुषों का विशेष अधिकार है।

किसी भी जनपद के गीतों को लें, उनमें कुछ ऐसे तत्व मिल जाते हैं जो सामान्यतया सभी क्षेत्रों के गीतों में मिल जाते हैं। ऐसे समान नियमों को रूढ़ियाँ कहा जाता है। ये लोकगीतों में पाए जाने वाली सार्वदेशिक प्रवृत्तियाँ होती है। कहने का

तात्पर्य यह है कि इन लोकगीतों में समाज का यथातथ्य एवं सजीव रूप देखने को मिलता है। लोक कवि ने समाज को जैसा देखा वैसा उसको अपनी वाणी के द्वारा प्रकट कर दिया। इन लोकगीतों में समाज के मधुर, कटु, श्रेष्ठ, अश्लील आदि सभी रूप देखने को मिलता है। लोकगीत वस्तुतः वर्णीय विषय एवं वस्तु को लोक के हृदय में उतार देने का काम करते हैं। वे समाज के तथा कथित शिष्ट एवं अशिष्ट दोनों ही वर्गों को प्रभावित करते हैं। वे सम्पूर्ण समाज की धरोहर भी है और उसके दर्पण भी हैं। उनका गायन हमारे सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों एवं अवसरों को आकर्षण प्रदान करता है। यह कथन सर्वथा सत्य है कि "लोकगीत जीवन का चलता - फिरता चलचित्र होता है।"

लोक गाथाएं

लोक गाथाएं वे गीत हैं जिनमें कथानक की ही प्रधानता पाई जाती है। गेयता भी इनकी विशेषता है, परंतु कथावस्तु के समकक्ष उसकी उतनी प्रधानता नहीं है। लोकगीत और लोकगाथा में सबसे प्रधान अंतर यह है कि लोकगीतों में जहाँ गेयता ही प्रधान है वहां लोकगाथाओं में कथानक को प्रधानता दी जाती है। लोकगाथाओं में गेयता का महत्वपूर्ण स्थान है परंतु इसका प्रधान तत्व नहीं है। दुसरा अंतर यह है कि लोक गीत आकार में छोटे होते हैं, परंतु लोकगाथायें महाकाव्य के समान लम्बी होती है, जिन्हें गवैया अनेक दिनों तक लगातार गाते रहते हैं। इस प्रकार इन दोनों के अंतर को भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. स्वरुपगत भेद और 2. विषयगत भेद के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लोकगीत आकर में छोटा होता है परंतु लोकगाथा का आकार विस्तृत तथा विशाल होता है। विषयगत भेद के अंतर्गत यह समझ लेना चाहिए कि लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों पुत्र जन्म, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, गवना तथा ऋतुओं, वर्षा, बसंत, ग्रीष्म एवं पर्वों होली, दीवाली आदि पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं परंतु लोकगाथाओं में प्रेम, युद्ध, रहस्य और रोमांच की ही प्रधानता रहती है।

डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक गाथाओं का वर्गीकरण तीन प्रमुख भाग में किया है :-

प्रेम गाथाएँ :- इन गाथाओं में प्रेम संबंधी घटनाओं के वर्णन पाए जाते हैं। भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया ऐसी ही गाथाएँ हैं। बाहुल्य की कथा प्रेम का महाकाव्य है। इसी प्रकार शोभा, नायकवा बंजारा एक अन्य प्रणय आख्यान है। राजस्थान की ढोला-मारु, पंजाब की हीर-राँझा, गुजरात की सोहिनी-माहिवाल, छत्तीसगढ़ की चंदैनी-गोंदा इसी प्रकार की गाथाओं का सुन्दर उदाहरण है।

वीर कथात्मक गाथाएँ :- इनमें किसी वीर के साहसपूर्ण और शौर्य संपन्न कार्य का वर्णन होता है। आल्हा-ऊदल (हिंदी), कुँवर-विजय की गाथाएँ इसी वर्ग की महत्वपूर्ण लोक गाथाएँ हैं।

रोमांचक कथात्मक गाथाएँ :- इस प्रकार की गाथाएँ वे हैं जिसमें रोमांच या रोमांस पाया जाता है। सोरठी की गाथा इस वर्ग की लोक गाथाओं का एक अच्छा उदाहरण है।

लोककथा

लोककथाओं का साहित्य में प्रमुख स्थान है। ये सभी अपनी सरसता और लोकप्रियता के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। माताएं सरसता और रोचक कहानियों को सुनाकर अपने बच्चों का मनोरंजन करती है। बालक रात को इन कथाओं को सुनते-सुनते निद्रादेवी की गोद में चले जाते हैं। जाड़े की रात में चौपाल में बैठकर गाँव के बूढ़े लोग आग जलाकर "अलाव" तापते रहते हैं। इस अलाव के चारों ओर बैठे बालकों को ये वृद्ध चुटकुले तथा मनोरंजक कहानियों को सुनाकर उनके मन को बहलाते हैं। इस प्रकार लोककथाएं लोक मनोरंजन का अपूर्व साधन है।

जनपदीय जीवन में जो प्राचीन परम्परा से चली आने वाली कथायें प्रचलित होती हैं उन्हें लोककथा कहा जाता है, क्योंकि उनमें लोक साहित्य के वे सभी लक्षण मिलते हैं जिनके कारण लोक साहित्य शिष्ट साहित्य से पृथक सत्ता रखता है और अपनी विशिष्ट पहचान कायम रखता है। लोक कथायें किसी एक रचनाकार की रचना नहीं होती अपितु इनकी रचना लोक मानस

द्वारा की जाती है। यही कारण है कि लोक कथाओं का आकार-प्रकार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। लोक कथाएँ चूंकि लोक रचनाकारों द्वारा रचित होती है इसलिए उन सामान्य पढ़े अथवा अनपढ़ लोगों की भाषा लोक जीवन में व्यवहत होने वाली बोली में रची जाती हैं। यह भाषा इतनी सहज, सरल और सुबोध होती है कि इसे समझने में कोई कष्ट श्रोताओं को नहीं होता। लोक कथाओं की भाषा में कही किसी प्रकार का साज श्रृंगार अथवा पद संरचना की योजना नहीं होती। लोक कथाओं के रचनाकार का कोई पता नहीं होता इसका एक अर्थ यह भी है कि हजारों वर्ष पूर्व कोई लोक कथा अपने बीज रूप में जिस व्यक्ति ने रची होगी वह उसी रूप में ज्यों की त्यों नहीं रहती उसमें यत् किंचित परिवर्तन अथवा संशोधन आवश्यक रूप से होते रहते हैं।

लोकनाट्य

लोकनाट्य के अन्तर्गत नृत्य, गीत और संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना अतिशय आनंद प्रदान करती है। परंतु इसके साथ ही यदि नृत्य का भी आयोजन होता है तब आनंद की सीमा नहीं रहती है। ग्रामीण जनता नाट्य को देखकर प्रसन्नता को जितना अनुभव करती है उतना अन्य वस्तु से नहीं।

लोकनाट्य से तात्पर्य उन नाटकों से है जिनके अभिनय के लिए रंगमंच और प्रसाधन की तैयारी नहीं करनी पड़ती 'जन सामान्य' की कृति जब नाट्य रूप में अपनी अकृत्रिमता को संजोय हुए कथोप कथनों के माध्यम से किसी कथावृत को उपस्थित करे बिना विशेष साधनों के उसे नाट्य कहा जाता है।

"लोक नाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों लोक विश्वासों और लोक तत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।"[2]

"लोक धर्मी रुढियों का अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने-अपने क्षेत्र के लोक मानस को आल्हादित उल्लासित तथा अनुप्राणित करता है लोक नाट्य कहलाता है।"[3]

लोकसुभाषित

लोक सुभाषित के अंतर्गत उन सभी उक्तियों अथवा सूक्तियों का अन्तर्भाव होता है जिसे साधारण लोग समय-समय पर कहा करते हैं। इसके प्रधानतया तीन भेद हैं :-

1. लोकोक्तियाँ
2. मुहावरे
3. पहेलियाँ

लोकोक्तियाँ वे सूक्तियां हैं, जो समुचित अवसर पर अपने कथन को विशेष बल प्रदान करने के लिए कही जाती है। मुहावरे वे वाक्यांश या वाक्यखण्ड हैं, जो किसी वर्णन में जान डाल देते हैं। इन कहावतों और मुहावरों में चिरसंचित अनुभूत ज्ञानराशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ मिलती हैं जिनमें नीति वचन कहे गए हैं। पहेलियों के द्वारा किसी भी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा की जाती है। बच्चे पूछ-पूछ कर मनोरंजन किया करते हैं। इस प्रकार पहेलियाँ बुद्धि परीक्षा के साथ ही साथ मनोरंजन का साधन भी है इस प्रकार लोक सुभाषित को लोकसाहित्य का एक स्वस्थ तथा लोकप्रिय अंग समझना चाहिए।

किसी भी भाषा में सुन्दरता लाने के लिए जिस प्रकार अलंकारों का प्रयोग आवश्यक है उसी प्रकार लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अपेक्षित है इसके प्रयोग से भाषा में सजीवता, सरसता और स्वाभाविकता का समावेश हो जाता है। इनके प्रयोग से भाषा के भाव एवं अर्थ का स्पष्टीकरण तो होता ही है, साथ ही हृदय में उठे हुए भाव का भी पूर्ण ज्ञान हो जाता है भाषा सरसता के भाव को अपनाती हुई पाठकों पर लेखक के मन्तव्य को स्पष्टतः व्यक्त कर देती है। लोकोक्तियों और मुहावरों को देखकर संबंधित समाज के विकास स्तर का अनुमान आसानी से लगा लिया जाता है। सारांश रूप में लोकोक्तियों द्वारा

किसी कथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है इनसे भाषा में बल आ जाता है और वह पाठक के मर्म को प्रभावित करने में समर्थ होती है।

पहेलियाँ ऐसी भाषा का प्रयोग जो समझ में न आए अथवा जिसका अर्थ कठिनाई से समझा जा सके, पहेली का रूप धारण कर लेता है। बातचीत के प्रसंग में भी हम जब यह चाहते हैं कि हमारी बात को सब लोग न जान जाएँ तब हम ऐसी कथन पद्धति अपनाते हैं जो दुर्बोध होती है। पहेलियों के मूल में किसी व्यक्ति का बुद्धि की परीक्षा की प्रवृत्ति ठहरती है, पहेलियों की उत्पत्ति का एक अन्य कारण मनोरंजन है, श्रमिक और कृषक दिनभर के कठिन श्रम के बाद रात भोजनादि करके पहेलियाँ बुझाकर अपना मनोरंजन करता हैं। पहेलियों की परम्परा बहुत प्राचीन है संस्कृत में इन्हें प्रहेलिका कहा जाता है। पहेलियाँ प्रायः जन-जीवन से संबंधित रहती है। लोक जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

निष्कर्ष

भारतीय लोक साहित्य सहस्त्रों वर्षों की वह संचित निधि है जो थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ निर्विघ्न रूप से प्रवाहित होकर एक के बाद दुसरी पीढ़ी तक पहुँचती रही है। लोकसाहित्य की यह परम्परा स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द रूप से चलती रही है। इसमें किसी प्रकार के बंधन नहीं हैं अतः न तो यह समाप्त हो पाई, न जकड़ी जा सकती इसकी विकास धारा अनंत एवं शाश्वत है। जब विशिष्ट साहित्य स्वबंधनों से जकड़कर स्थित हो जाता है, आगे बढ़ने का उसे मार्ग नहीं मिलता तब वह पीछे लौटकर उसी उद्गम भूमि (लोकसाहित्य) से नयी प्रेरणा शक्ति प्राप्त कर आगे गतिशील होने में सक्षम हो पाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह स्वीकार किया था कि "भारतीय जनता का सामान्य रूप पहिचानने के लिए पुराने परिचित ग्राम्य-गीतों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।"

कबीर का साहित्य जिसमें मसि कागद तक छुआ नहीं था, अलिखित लोकसाहित्य ही है, जो एक दुसरे तक आया और आज भी छत्तीसगढ़ के कबीरपंथी हजारो दोहे, गीत पद कंठस्थ किए हुए हैं। सुर तुलसी में भी लोकसाहित्य का बहुत सा अंश है। कितनी ही पुरानी कथाएं घटनाएँ आज नए रूप में जनमानस के बीच सदैव ऐसी घटनाएँ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य होते रहे हैं जिन्हें स्थायित्व देने के लिए अपनी धार्मिक-आस्तिक भावनाओं के संरक्षण के लिए उनकी कथायें गढ़ ली गयी उनकी गीत रच लिए गए और बाद में वे जन-जन के प्रिय बन गए। वही पुरानी कथायें आज हमें अनेक रूपों में प्रेरित करती हैं। जिनमें कितने ही ऐतिहासिक पृष्ठ छिपे हुए हैं। वस्तुतः इस प्रकार की लोककथायें ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक घटनाओं के सत्यान्वेषण में सहायक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बरसैया डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त - छ.ग. का साहित्य-इतिहास, वैभव प्रकाशन रायपुर।
2. भारतीय नाट्य साहित्य सं डॉ. नागेन्द्र पृ.84
3. राजस्थानी लोक नाट्य डॉ. महेन्द्र भानावत पृ. 3
4. उपाध्याय डॉ. रविशंकर - भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, कला प्रकाशन वाराणसी।
5. बेहार डॉ. राम कुमार - छत्तीसगढ़ का इतिहास, छ.ग. राज्य ग्रंथ अकादमी।
6. सहदेव जीतमित्र प्रसाद - दक्षिण कोसल का सांस्कृतिक इतिहास, छ.ग. राज्य ग्रंथ अकादमी।
7. सोनी डॉ. राजेन्द्र - छत्तीसगढ़ अतीत से आगत तक एक सारगर्भित सामान्य ज्ञान, शिक्षादुत ग्रंथागार प्रकाशन रायपुर।
8. शर्मा डॉ. श्रीराम चतुर्वेदी - लोक साहित्य के सिद्धांत और परम्परा, डॉ. राजेश्वर प्रसाद, हरीश प्रकाशन मंदिर आगरा छात्र संस्करण 1994-1995
9. शुक्ल डॉ. अनिता - छत्तीसगढ़ लोकगीतों की सांस्कृतिक अध्ययन, जगत भारती प्रकाशन इलाहबाद।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

उच्च शिक्षा के शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव : एक अध्ययन

वीर पाल
सहायक आचार्य,
शिक्षाशास्त्र विभाग, सीएसएन पी जी कॉलेज, हरदोई
Email: veergangwar66@gmail.com

डॉ. सुरेंद्र प्रताप
सहायक आचार्य, बीएड विभाग,
महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरदोई
Email: surendrapratap14@gmail.com

सारांश : यह अध्ययन उच्च शिक्षा में शिक्षकों के पेशेवर तनाव के कारणों, प्रभावों और लिंग और अनुभव के आधार पर तनाव में भिन्नताओं का विश्लेषण करता है। शिक्षकों में तनाव कई कारणों से उत्पन्न होता है, जैसे कार्यभार, समय का दबाव, छात्रों का व्यवहार प्रबंधन, प्रशासनिक मांगें और आपसी तनाव। इस अध्ययन में हारदोई जिले के 200 शिक्षकों (100 पुरुष और 100 महिला) का नमूना लिया गया। परिणाम दर्शाते हैं कि कार्यभार और समय का दबाव प्रमुख तनाव कारक थे। महिला शिक्षकों ने पुरुष शिक्षकों के मुकाबले थोड़ा अधिक तनाव महसूस किया। जिन शिक्षकों के पास अधिक अनुभव था, उन्होंने उच्च स्तर का तनाव महसूस किया, लेकिन वे बेहतर तनाव प्रबंधन कौशल भी दिखाते थे। अध्ययन यह सुझाव देता है कि शैक्षिक संस्थाओं को ऐसी नीतियां अपनानी चाहिए जो तनाव को प्रबंधित करने में मदद करें, जैसे कार्यभार को कम करना, समय प्रबंधन में सुधार करना और कर्मचारियों के बीच बेहतर आपसी संबंध बढ़ाना। ये निष्कर्ष यह समझने में मदद करते हैं कि पेशेवर तनाव कैसे शिक्षण प्रभावशीलता और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, और इसके समाधान के लिए उपाय सुझाते हैं।

कुंजी शब्द : पेशेवर तनाव, उच्च शिक्षा, शिक्षक, कार्यभार, समय दबाव, छात्र व्यवहार, प्रशासनिक मांगें, लिंग भिन्नताएँ, तनाव प्रबंधन, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षण प्रभावशीलता।

परिचय : मानव जीवन में तनाव एक सामान्य प्रक्रिया है, जो किसी भी आयु, लिंग, और कार्यक्षेत्र में अनुभव किया जा सकता है। हालांकि, शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से उच्च शिक्षा में, तनाव का स्तर अधिक जटिल हो जाता है क्योंकि शिक्षकों को शैक्षणिक, प्रशासनिक, और व्यक्तिगत चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शिक्षकों पर तनाव का प्रभाव न केवल उनके पेशेवर प्रदर्शन को बाधित करता है, बल्कि छात्रों और शिक्षा प्रणाली पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है।

तनाव को साधारण रूप से एक मानसिक या शारीरिक स्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो बाहरी मांगों और व्यक्तिगत क्षमताओं के बीच असंतुलन के कारण उत्पन्न होता है। शिक्षकों के संदर्भ में, व्यावसायिक तनाव (Occupational Stress) कार्य से संबंधित उन चुनौतियों और दबावों को दर्शाता है, जो उनकी कार्यक्षमता और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

तनाव की अवधारणा : "तनाव" शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के "stringere" शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है "तनाव, दबाव या कठिनाई।" इसे पहले भौतिकी में एक वस्तु पर बल लगाने के संदर्भ में उपयोग किया गया था। 1950 के दशक में डॉ. हंस सेलिये ने इसे जीवन विज्ञान में लागू किया और इसे उस स्थिति के रूप में परिभाषित किया, जिसमें

व्यक्ति बाहरी या आंतरिक दबावों के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया देने में असमर्थ होता है।

लाजरूस और लॉनियर (1978) के अनुसार, तनाव तब होता है जब पर्यावरणीय या आंतरिक मांगें किसी व्यक्ति की अनुकूलन क्षमता को पार कर जाती हैं। शिक्षकों के संदर्भ में, तनाव उनके मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

शिक्षक तनाव के कारण : शिक्षकों के बीच तनाव के कई कारक हो सकते हैं, जो व्यक्तिगत, संगठनात्मक और पर्यावरणीय हो सकते हैं। इनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. कार्यभार और समय का दबाव : शिक्षकों को पाठ्यक्रम पूरा करने, परीक्षा तैयार करने, और छात्रों के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने में अत्यधिक कार्यभार का सामना करना पड़ता है। समय की कमी और कार्य की अधिकता तनाव का प्रमुख कारण है।

2. छात्र व्यवहार प्रबंधन : कक्षा में अनुशासन बनाए रखना, विशेष रूप से बड़े और विविध समूहों में, शिक्षकों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

3. प्रशासनिक मांगें : शिक्षकों को शैक्षिक गतिविधियों के अलावा प्रशासनिक कार्यों जैसे कि रिपोर्टिंग, मीटिंग्स, और रिकॉर्ड रखरखाव में भी समय देना पड़ता है।

4. आर्थिक अनिश्चितता : विशेष रूप से स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में, शिक्षकों को वेतन असमानता और नौकरी की अस्थिरता का सामना करना पड़ता है।

5. पारस्परिक संबंध : सहकर्मियों और प्रबंधन के साथ संबंधों में तनाव भी कार्यस्थल पर असंतोष का कारण बन सकता है।

शिक्षक तनाव का प्रभाव : शिक्षकों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर तनाव का गहरा प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तिगत प्रभाव : तनाव के कारण शिक्षकों में अवसाद, चिंता, और थकावट जैसी समस्याएं हो सकती हैं। दीर्घकालिक तनाव उच्च रक्तचाप, मधुमेह और हृदय रोगों जैसे स्वास्थ्य विकारों का कारण बन सकता है।

पेशेवर प्रभाव : तनावग्रस्त शिक्षक कक्षा में अपने कर्तव्यों को प्रभावी ढंग से पूरा नहीं कर पाते। इससे उनकी कार्यक्षमता, छात्रों के साथ संबंध, और शैक्षिक परिणाम प्रभावित होते हैं।

शिक्षा प्रणाली पर प्रभाव : जब शिक्षक तनावग्रस्त होते हैं, तो यह छात्रों की सीखने की प्रक्रिया और शिक्षा की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

उच्च शिक्षा में तनाव का महत्व : उच्च शिक्षा के शिक्षक न केवल शिक्षा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार होते हैं, बल्कि वे शोध, नवाचार, और प्रशासनिक कार्यों में भी योगदान देते हैं। ऐसे में तनाव के अध्ययन की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। यह अध्ययन न केवल शिक्षकों के तनाव के स्तर को समझने में मदद करता है, बल्कि यह संस्थागत नीतियों और कार्यक्रमों के विकास में भी सहायक हो सकता है।

शोध का उद्देश्य : हरदोई जिले के स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के तनाव के स्तर और उसके कारणों का अध्ययन करने का उद्देश्य है। इस शोध के विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षकों के बीच तनाव के विभिन्न स्तरों का आकलन करना।
2. पुरुष और महिला शिक्षकों के बीच तनाव के स्तर की तुलना करना।
3. तनाव के कारकों और उनके प्रभावों को समझना।
4. संस्थागत समर्थन और नीतियों के माध्यम से तनाव प्रबंधन के लिए सुझाव देना।

महत्व और योगदान : शोध के निष्कर्ष न केवल शिक्षकों को उनके कार्यस्थल पर तनाव प्रबंधन के उपाय अपनाने में मदद करेंगे, बल्कि शिक्षा संस्थानों को भी शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को बेहतर बनाने के लिए रणनीतियाँ विकसित करने में सहायता करेंगे।

शिक्षा क्षेत्र में तनाव के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए, यह आवश्यक है कि शिक्षकों के कार्यस्थल पर तनाव को समझा और प्रबंधित किया जाए। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष न केवल शिक्षकों की भलाई सुनिश्चित करेंगे, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार करेंगे। तनाव प्रबंधन के लिए संस्थागत नीतियां विकसित करना और शिक्षकों को उचित सहायता प्रदान करना आवश्यक है।

व्यावसायिक तनाव पर किए गए अध्ययन : व्यावसायिक तनाव पर किए गए विभिन्न अध्ययनों ने शिक्षकों के पेशेवर जीवन में तनाव के कारणों और उनके प्रभावों को उजागर किया है। परवेज़ और रुबिना (2002) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक विद्यालय की महिला शिक्षिकाएं प्राथमिक विद्यालय की शिक्षिकाओं की तुलना में अधिक तनावग्रस्त थीं। इस अध्ययन ने महिला शिक्षकों के बीच तनाव के कारकों को रेखांकित किया। इसी प्रकार, परवेज़ और हनीफ (2003) ने पाकिस्तानी महिला शिक्षकों पर किए गए शोध में यह निष्कर्ष निकाला कि निजी स्कूल के शिक्षकों में सरकारी शिक्षकों की तुलना में अधिक तनाव पाया गया, जो शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूपों में प्रकट होता है।

रविशंकरन और राजेंद्रन (2007) ने पाया कि महिला शिक्षकों में व्यक्तिगत तनाव का स्तर अधिक था। चोपड़ा (2009) ने माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव और उत्तरदायित्व के बीच नकारात्मक संबंध को दर्शाया। इस बीच, मेहता (2013) ने यह सिद्ध किया कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता शिक्षकों के तनाव को कम करने और उनकी कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक हो सकती है।

अनवर और उनके सहयोगियों (2014) ने तनाव, प्रदर्शन और भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बीच जटिल संबंधों का विश्लेषण किया। उन्होंने सुझाव दिया कि संस्थानों को उन कारकों की पहचान करनी चाहिए जो तनाव में योगदान देते हैं और प्रबंधन की दक्षता में सुधार करना चाहिए। रत्नावत और झा (2014) ने अपने अध्ययन में व्यावसायिक तनाव के प्रेरकों और उनके नौकरी प्रदर्शन पर प्रभाव को समझने के लिए साहित्य का पुनः विश्लेषण किया।

सुरक्षा और छिकारा (2014) ने सामान्य तनाव की समीक्षा की और इसका शिक्षण स्टाफ पर प्रभाव केंद्रित किया। भारत में शिक्षकों के तनाव पर गुप्ता और अन्य (2015) ने वैश्विक साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की, जबकि पांडे और सक्सेना (2015) ने शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव पर आलोचनात्मक समीक्षा की।

भुईं (2016) ने वैश्विक उच्च शिक्षा क्षेत्र में व्यावसायिक तनाव का विश्लेषण किया और सराफिस एट अल. (2016) ने तनाव के विभिन्न आयामों और सहकर्मियों, डॉक्टरों और पर्यवेक्षकों के साथ संघर्ष के बीच नकारात्मक संबंध पाया। कार्तिकेयन और बाबू (2016) के अध्ययन में तमिलनाडु के महिला शिक्षकों में पुरुष शिक्षकों की तुलना में तनाव का स्तर अधिक पाया गया। इसी प्रकार, बसु (2017) ने कार्यस्थल पर अनुचित न्याय, प्रयास-इनाम असंतुलन और सीमित समर्थन को तनाव और नकारात्मक स्वास्थ्य परिणामों के लिए जिम्मेदार ठहराया।

वनीता ए. (2017) ने व्यावसायिक तनाव और इसके निपटने के तरीकों का शिक्षकों के प्रदर्शन और संतुष्टि पर प्रभाव का अध्ययन किया। वहीं, देसूकी एट अल. (2017) ने मिस्र के शिक्षकों में तनाव और मानसिक स्वास्थ्य पर और अधिक शोध की आवश्यकता को रेखांकित किया। श्रीवास्तव और शुक्ला (2017) ने भारतीय कॉलेज शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव पर उपलब्ध साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण किया।

जानी (2017) ने यह निष्कर्ष निकाला कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों में निजी विद्यालय के शिक्षकों की तुलना में अधिक तनाव था। मेंग एट अल. (2018) ने पेशेवर विकास, प्रशासनिक मामले और शोध गतिविधियों को शिक्षकों के तनाव को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक माना। ट्रेवर्स (2018) ने यह पाया कि अन्य पेशेवर समूहों की तुलना में शिक्षकों में तनाव से जुड़े लक्षणों की उच्च दर थी।

झांग (2019) ने शिक्षक तनाव को कम करने और बर्नआउट रोकने के लिए निपटने की रणनीतियों को रेखांकित किया। व्यास (2019) ने पाया कि सरकारी महिला माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों में निजी शिक्षकों की तुलना में कम तनाव और अधिक संतुष्टि थी। असलोई एट अल. (2020) ने प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों में तनाव और उनके कार्य प्रदर्शन के बीच

महत्वपूर्ण विपरीत संबंध को उजागर किया।

सिंह और उनके सहयोगियों (2020) ने अकादमिक नर्सों द्वारा अनुभव किए गए व्यावसायिक तनाव को समझने के लिए मिश्रित-पद्धति प्रणालीगत समीक्षा प्रस्तुत की। पेस एट अल. (2021) ने नौकरशाही प्रक्रियाओं से जुड़े कार्यभार के कारण विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों की काम से संबंधित कल्याण की धारणा को नकारात्मक पाया।

अंततः, ओडुकाडो एट अल. (2021) ने कोविड-19 महामारी के दौरान शिक्षकों के तनाव के मध्यम स्तर की रिपोर्ट की, जबकि कोसिर एट अल. (2022) ने शिक्षकों के तनाव में लिंग या ग्रामीण-शहरी अंतर को असंगत पाया। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षकों में तनाव के विभिन्न आयाम और परिणाम हैं, जिनका अध्ययन और प्रबंधन शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

परिणाम और विश्लेषण : इस अध्ययन में, 200 उच्च शिक्षा शिक्षकों (100 पुरुष और 100 महिला) के बीच व्यावसायिक तनाव के स्तर का विश्लेषण किया गया। शोध के उद्देश्य के अनुसार, शिक्षकों के विभिन्न तनाव कारकों जैसे कार्यभार, समय दबाव, छात्र व्यवहार, प्रशासनिक मांगें और पारस्परिक तनाव को मापा गया। निम्नलिखित परिणाम और विश्लेषण प्रस्तुत किए गए हैं।

1. डेमोग्राफिक विवरण

कुल शिक्षक : अध्ययन में 200 शिक्षक शामिल थे, जिनमें 100 पुरुष और 100 महिला शिक्षक थे, जिससे लिंग वितरण समान था।

आयु : शिक्षकों की औसत आयु 36.4 वर्ष रही, जो 25 से 55 वर्ष के बीच थी।

शिक्षण अनुभव : शिक्षकों का औसत शिक्षण अनुभव 8.4 वर्ष था, जिसमें 1 से 2017 वर्षों का अनुभव था। अधिकांश शिक्षकों का अनुभव 5 से 10 वर्षों का था।

2. तनाव के विभिन्न कारकों का विश्लेषण : शिक्षकों के तनाव स्तर का मूल्यांकन निम्नलिखित कारकों के आधार पर किया गया— कार्यभार तनाव, समय दबाव, छात्र व्यवहार तनाव, प्रशासनिक मांगें और पारस्परिक तनाव।

मेट्रिक	मूल्य
कुल शिक्षक	200
पुरुष शिक्षक	100
महिला शिक्षक	100
औसत आयु	36.4 वर्ष
औसत शिक्षण अनुभव	8.4 वर्ष
औसत कार्यभार तनाव (1-5)	3.8
औसत समय दबाव (1-5)	3.6
औसत छात्र व्यवहार तनाव (1-5)	3.7
औसत प्रशासनिक मांगें (1-5)	3.5
औसत पारस्परिक तनाव (1-5)	3.4
औसत कुल तनाव स्कोर (25 तक)	18.0

3. तनाव कारकों का विश्लेषण :

कार्यभार तनाव : औसतन, शिक्षकों ने कार्यभार को तनाव का प्रमुख कारण बताया। कार्यभार तनाव का औसत स्कोर 3.8 था, जो यह दर्शाता है कि अधिकांश शिक्षक अपने कार्यभार के कारण मध्यम से उच्च स्तर के तनाव का अनुभव करते

हैं। उच्च शिक्षण अनुभव वाले शिक्षकों में कार्यभार तनाव थोड़ा अधिक था।

समय दबाव : समय प्रबंधन और डेडलाइन को लेकर तनाव का औसत स्कोर 3.6 था। अधिकांश शिक्षक समय की कमी और कार्यों की अधिकता के कारण तनाव अनुभव करते हैं। खासकर, जो शिक्षक प्रशासनिक कार्यों में शामिल हैं, उन्होंने समय दबाव को एक महत्वपूर्ण तनाव कारक माना।

छात्र व्यवहार तनाव : औसतन, शिक्षक छात्रों के व्यवहार को नियंत्रित करने में होने वाली कठिनाइयों को तनाव का एक प्रमुख कारण मानते हैं। छात्र व्यवहार तनाव का औसत स्कोर 3.7 था। महिला शिक्षकों में इस तनाव का स्तर पुरुषों से थोड़ा अधिक पाया गया, जो इस बात को दर्शाता है कि महिला शिक्षक अधिक तनाव का अनुभव करती हैं जब उन्हें छात्रों के व्यवहार को संभालना होता है।

प्रशासनिक मांगें : प्रशासनिक कार्यों और कागजी काम के कारण तनाव का औसत स्कोर 3.5 था। यह दर्शाता है कि अधिकांश शिक्षक प्रशासनिक मांगों को एक महत्वपूर्ण तनाव कारक मानते हैं, जो उनके शिक्षण कार्य को प्रभावित करता है।

पारस्परिक तनाव : सहकर्मियों और छात्रों के साथ संबंधों में उत्पन्न होने वाला तनाव औसतन 3.4 था। यह तनाव कारक विशेष रूप से तब महसूस किया गया जब शिक्षक अधिक अनुभवी होते थे और विभिन्न विभागों और प्रशासन के साथ समन्वय करते थे।

4. लिंग आधारित तनाव का विश्लेषण

पुरुष और महिला शिक्षकों में तनाव : अध्ययन में पाया गया कि महिला शिक्षकों में औसतन अधिक तनाव था। महिला शिक्षकों का औसत कुल तनाव स्कोर 18.4 था, जबकि पुरुष शिक्षकों का औसत स्कोर 17.6 था। इसका कारण महिला शिक्षकों पर कार्यभार, समय दबाव और पारिवारिक जिम्मेदारियों का बढ़ा हुआ दबाव हो सकता है।

5. अनुभव आधारित तनाव का विश्लेषण

अनुभव और तनाव : अध्ययन में यह पाया गया कि शिक्षकों का अनुभव और तनाव का स्तर परस्पर जुड़े हुए हैं। शिक्षकों जिनके पास 10 या उससे अधिक वर्षों का अनुभव था, उन्होंने कार्यभार और समय दबाव से संबंधित उच्च तनाव का अनुभव किया। हालांकि, अनुभवी शिक्षकों के पास तनाव का बेहतर प्रबंधन करने की क्षमता भी थी। औसतन, अधिक अनुभव वाले शिक्षकों का तनाव स्तर 19.2 था, जबकि कम अनुभव वाले शिक्षकों का तनाव स्तर 17.0 था।

यह अध्ययन यह दर्शाता है कि उच्च शिक्षा के शिक्षकों में विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक तनाव होते हैं, जो उनके कार्य, समय प्रबंधन, छात्र व्यवहार, प्रशासनिक कार्यों और पारस्परिक संबंधों से संबंधित होते हैं।

महिला शिक्षक : औसतन अधिक तनाव का अनुभव करती हैं।

कार्यभार और समय दबाव : प्रमुख तनाव कारक के रूप में उभरते हैं।

अनुभव : अधिक अनुभव वाले शिक्षकों के लिए तनाव का स्तर अधिक होता है, लेकिन उनके पास तनाव से निपटने के बेहतर उपाय भी होते हैं।

शैक्षिक संस्थानों को इस अध्ययन के परिणामों का उपयोग कर शिक्षकों के तनाव को कम करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने चाहिए, जैसे कि कार्यभार में कमी, समय प्रबंधन में सहायता, और बेहतर पारस्परिक संबंध बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण देना।

चर्चा (Discussion) : इस अध्ययन का उद्देश्य उच्च शिक्षा में शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के स्तर को मापना था और विभिन्न तनाव कारकों का विश्लेषण करना था। प्राप्त परिणामों के आधार पर, यह पाया गया कि कार्यभार, समय दबाव, छात्र व्यवहार, प्रशासनिक मांगें और पारस्परिक तनाव जैसे विभिन्न कारक शिक्षकों के तनाव स्तर को प्रभावित करते हैं। इस अध्ययन के परिणामों को पहले के कुछ महत्वपूर्ण शोधों से तुलना करते हुए निम्नलिखित बिंदुओं पर चर्चा की गई है।

1. कार्यभार तनाव (Workload Stress) : इस अध्ययन में पाया गया कि कार्यभार तनाव का औसत स्कोर 3.8 था, जो यह दर्शाता है कि शिक्षक अपने कार्यभार के कारण उच्च स्तर के तनाव का अनुभव करते हैं। यह परिणाम मिश्रा (2016) के अध्ययन से मेल खाता है, जिसमें यह पाया गया था कि शिक्षक कार्यभार और अतिरिक्त कक्षाएं लेने के कारण तनाव महसूस करते हैं। मिश्रा के अध्ययन में भी कार्यभार को एक प्रमुख तनाव कारक माना गया था।

सार्वजनिक और निजी स्कूलों के शिक्षकों पर किए गए शोध (गुप्ता, 2018) में भी यह पाया गया था कि उच्च कार्यभार और छात्रों के लिए अतिरिक्त समय देने के कारण शिक्षक तनाव का अनुभव करते हैं। इस अध्ययन में भी कार्यभार के बढ़ते दबाव को तनाव का मुख्य कारण बताया गया था, जो हमारे अध्ययन के निष्कर्षों से मेल खाता है।

2. समय दबाव (Time Pressure) : इस अध्ययन में समय दबाव का औसत स्कोर 3.6 था, जो दर्शाता है कि शिक्षक अपने निर्धारित समय सीमा और डेडलाइन के कारण तनाव अनुभव करते हैं। यह परिणाम सिंह (2017) के शोध से मेल खाता है, जिसमें यह पाया गया था कि समय प्रबंधन में कठिनाई और डेडलाइन का दबाव शिक्षकों में उच्च तनाव का कारण बनता है। उनके अध्ययन में भी समय दबाव को एक महत्वपूर्ण तनाव कारक के रूप में पहचाना गया था।

इसके अलावा, चतुर्वेदी (2020) के अध्ययन में यह पाया गया था कि शिक्षकों को समय प्रबंधन की कठिनाइयों के कारण विशेष रूप से तनाव का सामना करना पड़ता है। हमारे अध्ययन में भी समय दबाव को तनाव के महत्वपूर्ण कारणों में से एक माना गया है, जो इस शोध के साथ सहमत है।

3. छात्र व्यवहार तनाव (Student Behavior Stress) : इस अध्ययन में छात्र व्यवहार तनाव का औसत स्कोर 3.7 था, जो यह दर्शाता है कि शिक्षक छात्रों के अनुशासन और व्यवहार को नियंत्रित करने में कठिनाई महसूस करते हैं। शर्मा और शर्मा (2019) के शोध में भी यही पाया गया था कि शिक्षकों को छात्रों के अनुशासन को नियंत्रित करने में मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है। शर्मा के अध्ययन में छात्र व्यवहार को तनाव का एक प्रमुख कारक माना गया था, जो हमारे अध्ययन के परिणामों से मेल खाता है।

इसके अलावा, रॉय (2018) के अध्ययन में भी यह बताया गया था कि विद्यार्थियों के व्यवहार को प्रबंधित करना शिक्षकों के लिए एक बड़ा तनावपूर्ण कार्य हो सकता है, विशेष रूप से उच्च कक्षा में जहाँ विद्यार्थियों का ध्यान केंद्रित रखना कठिन होता है। यह परिणाम हमारे अध्ययन से भी मेल खाता है, जिसमें महिला शिक्षकों ने छात्र व्यवहार को एक बड़ा तनाव कारक माना।

4. प्रशासनिक मांगें (Administrative Demands) : हमारे अध्ययन में प्रशासनिक मांगों का औसत स्कोर 3.5 था, जो दर्शाता है कि शिक्षकों को प्रशासनिक कार्यों के कारण भी तनाव का सामना करना पड़ता है। नायक (2016) के शोध में यह पाया गया था कि शिक्षकों को शैक्षिक और प्रशासनिक कार्यों में संतुलन बनाना मुश्किल होता है, जिससे वे मानसिक तनाव का सामना करते हैं। नायक के अध्ययन में प्रशासनिक कार्यों को तनाव का एक मुख्य कारक माना गया था, जो हमारे अध्ययन के परिणामों से मेल खाता है।

5. पारस्परिक तनाव (Interpersonal Stress) : इस अध्ययन में पारस्परिक तनाव का औसत स्कोर 3.4 था, जो यह दर्शाता है कि सहकर्मियों और छात्रों के साथ रिश्तों में उत्पन्न तनाव भी शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। झा (2015) के अध्ययन में यह पाया गया था कि शिक्षा संस्थानों में सहकर्मियों और छात्रों के साथ रिश्तों में तनाव के कारण शिक्षक मानसिक तनाव का सामना करते हैं। उनका अध्ययन भी हमारे परिणामों के समान था, जिसमें पारस्परिक तनाव को एक महत्वपूर्ण कारक माना गया था।

6. लिंग आधारित तनाव (Gender-based Stress) : इस अध्ययन में पाया गया कि महिला शिक्षकों में औसतन अधिक तनाव था (कुल तनाव स्कोर 18.4), जबकि पुरुष शिक्षकों का औसत तनाव स्कोर 17.6 था। यह परिणाम कुमार (2017) के शोध से मेल खाता है, जिसमें महिला शिक्षकों ने कार्यभार, पारिवारिक जिम्मेदारियों और प्रशासनिक दबावों के कारण अधिक तनाव का अनुभव किया। कुमार के अध्ययन में भी यह पाया गया था कि महिला शिक्षकों को समाज में

उनकी पारंपरिक भूमिका और कार्यस्थल पर होने वाले तनाव के कारण अधिक दबाव महसूस होता है।

7. अनुभव और तनाव (Experience and Stress) : हमारे अध्ययन में यह पाया गया कि अधिक शिक्षण अनुभव वाले शिक्षकों का तनाव स्तर अधिक था (औसत कुल तनाव स्कोर 19.2)। यह गुप्ता और पांडे (2019) के शोध से मेल खाता है, जिसमें यह पाया गया था कि अधिक अनुभव वाले शिक्षक अधिक कार्यभार, प्रशासनिक मांगों और जिम्मेदारियों के कारण अधिक तनाव का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष : सारांश रूप में, यह अध्ययन यह दर्शाता है कि कार्यभार, समय दबाव, छात्र व्यवहार, प्रशासनिक मांगें और पारस्परिक तनाव जैसे कारक उच्च शिक्षा के शिक्षकों के तनाव स्तर को प्रभावित करते हैं। महिला शिक्षक और अधिक अनुभवी शिक्षक अधिक तनाव का अनुभव करते हैं, जो पहले किए गए शोधों से मेल खाता है। इस अध्ययन के परिणाम शैक्षिक संस्थानों को यह सुझाव देते हैं कि वे शिक्षकों के तनाव को कम करने के लिए कार्यभार में कमी, समय प्रबंधन में सहायता, और मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के आयोजन के लिए कदम उठाएं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परवेज़, एस., और हनीफ़, आर, (2002), महिला विद्यालय शिक्षिकाओं में कार्य तनाव के स्तर और स्रोत, पाकिस्तान जर्नल ऑफ सायकोलॉजिकल रिसर्च, 18(विंटर)।
2. परवेज़, एस., और हनीफ, आर. (2003), महिला स्कूल शिक्षकों में कार्य तनाव के स्तर और स्रोत। पाकिस्तान जर्नल ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्च, 97-108।
3. रविचंद्रन, पी., और राजेंद्रन, आर. (2007), शिक्षकों के तनाव के स्तर और उसके स्रोतों का विश्लेषण। पाकिस्तान जर्नल ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्च, 97-108।
4. चोपड़ा, आर., और गर्टिया, आर. (2009), माध्यमिक विद्यालय शिक्षकों की उत्तरदायित्व क्षमता और उनके व्यावसायिक तनाव के संबंध में अध्ययन। एडूट्रैक्स, 8(7), 41-43।
5. मेहता, ए. (2013), शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव को कम करने में भावनात्मक बुद्धिमत्ता की भूमिका पर अध्ययन। इंटरनेशनल मंथली रेफरीड जर्नल ऑफ रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, 2, 19-28।
6. अनवर, के., तुन, यू., और ओन, एच. (2014)। व्यावसायिक तनाव, प्रदर्शन और भावनात्मक बुद्धिमत्तारू एक आलोचनात्मक समीक्षा। मई।
7. रत्नावत, आर. जी., और झा, पी. सी. (2014)। कर्मचारी प्रदर्शन पर नौकरी से संबंधित तनाव का प्रभावरू एक समीक्षा और अनुसंधान एजेंडा। 16(11), 1-6।
8. सुरक्षा, डी. के., और छिकारा, एस. (2014)। व्यावसायिक तनावरू एक वैचारिक ढांचा। भारतीय जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 4(9), 121-124।
9. गुप्ता, वी., राव, ई., और मुखजी, आर. (2015)। फैकल्टी सदस्यों के बीच व्यावसायिक तनावरू साहित्य की समीक्षा। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 4(2), 18-27।
10. पांडे, एन. के., और सक्सेना, ए. (2015)। व्यावसायिक तनावरू राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में एक समीक्षा अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ऑर्गेनाइजेशनल बिहेवियर एंड मैनेजमेंट परिप्रेक्ष्य।
11. भुई, पी. के. (2016)। क्या शिक्षण तनावपूर्ण है? वैश्विक उच्च शिक्षा क्षेत्र पर साहित्य की समीक्षा। 6(3), 599 609।
12. कार्तिकेयन, पी., और बाबू, एस. (2016). तमिलनाडु के तंजावुर में काम कर रहे मैट्रिकुलेशन स्कूल शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव और सामना करने की रणनीतियाँ। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 2(3), 614-617।
13. बसु, एस., कय्यूम, एच., और मेसन, एस. (2017)। आपातकालीन विभाग में व्यावसायिक तनावरू एक व्यवस्थित

साहित्य समीक्षा। इमरजेंसी मेडिसिन जर्नल, 34(7), 441-447।
14. कोसिर, के., डुगोनिक, एस., हुस्किक, ए., ग्राच्नर, जे., कोकोल, ज़ेड., और क्रांज, ज़ेड. (2022)। कोविड-19 महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षा संक्रमण अवधि में शिक्षकों और स्कूल काउंसलरों के कार्य तनाव के भविष्यवक्ता। एजुकेशनल स्टडीज, 48(6), 844-848।
15. वनीता, ए. (2017)। "सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कर्मचारियों के बीच व्यावसायिक तनाव पर अध्ययन।" अन्ना विश्वविद्यालय, चेन्नई, तमिलनाडु को प्रस्तुत शोध।
16. वांग, पी., चू, पी., वांग, जे., पैन, आर., सन, वाई., यान, एम., और झांग, डी. (2020)। चीनी विश्वविद्यालय के तीन प्रकार के शिक्षकों में नौकरी तनाव और संगठनात्मक प्रतिबद्धता के बीच संबंधरू नौकरी बर्नआउट और नौकरी संतोष के मध्यस्थ प्रभाव। फ्रंटियर्स इन साइकोलॉजी, 11, 576768।
17. सराफिस, पी., रुसाकी, ई., त्सूनीस, ए., मल्लियारो, एम., लहाना, एल., बामिडिस, पी., ... और पापस्तव्रू, ई. (2016)। नर्सों के देखभाल व्यवहार और उनके स्वास्थ्य-संबंधी जीवन की गुणवत्ता पर व्यावसायिक तनाव का प्रभाव। बीएमसी नर्सिंग, 15, 1-9।
18. ओडुकाडो, आर. एम., राबाकल, जे., और टैमडांग, के. (2021)। कोविड-19 महामारी के कारण पेशेवर शिक्षकों द्वारा महसूस किया गया तनाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड इनोवेशन, (15), 305-316।
19. जानी, बी. (2017). कालाहांडी के प्राथमिक विद्यालय शिक्षकों का तनाव। इंटरनेशनल एजुकेशन एंड रिसर्च जर्नल, 3(1), 1-7।
20. देसूकी, डी., और अल्लम, एच. (2017)। मिस्र के शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव, चिंता और अवसाद। जर्नल ऑफ एपिडेमियोलॉजी एंड ग्लोबल हेल्थ, 7(3), 191-198।
21. मेंग, क्यू., और वांग, जी. (2018)। विश्वविद्यालय के शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के स्रोतों पर एक शोधरू एक चीनी केस स्टडी। साइकोलॉजी रिसर्च एंड बिहेवियर मैनेजमेंट, 597-605।
22. श्रीवास्तव, ए., और शुक्ला, एन. (2017)। भारत में उच्च शिक्षण संस्थानों में काम करने वाले फैकल्टी सदस्यों को प्रभावित करने वाले व्यावसायिक तनाव कारकों पर एक आलोचनात्मक समीक्षा। पैसिफिक बिजनेस रिव्यू इंटरनेशनल, 10(3), 129 138।
23. व्यास, आर. (2019). सरकारी और निजी विद्यालयों की महिला शिक्षकों में व्यावसायिक तनाव, चिंता और नौकरी संतुष्टि। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 7(2), 990-996।
24. पेस, एफ., डुरसो, जी., जैपुल्ला, सी., और पेस, यू. (2021)। विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों के बीच कार्यभार और व्यक्तिगत कल्याण के बीच संबंध। करंट साइकोलॉजी, 40, 3417-3424।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

THE EXPLAIN GREAT PHILOSOPHER IN INDIA THE EDUCATIONAL PHILOSOPHY OF SWAMI VIVEKANAND, GURUDEV RABINDRA NATH TAIGORE AND DR. SARWPALLI RADHAKRUSHNAN

Santosh Kumar Singh
UGC NET principal Ruma B T C college Gobari Pratapgarh UP-230502
Email Santoshsinghpbh 299@gmail.com, Mob : 6394772666

Introduction

Swami Viveknanda was born in 12 January, 1863 AD in Calcutta. His earlier name was Narendra Nath Dutt. He was a brilliant student since childhood. His principal Hasty said about him. "I have traveled to different countries of the world, but in my teens I could not find a young man of equal ability and great abilities in a German University." Swami Vivekanada reached Dakshineswar on the the inspiration given by Mr. Hastry. In the same temple he met Ramakrishna Paramhansa. Swamiji interviewed him. This interview was a unique event in his life. Swamiji got satisfaction from the answers of Ramakrishna Paramhanse.

When Narendra Nath went to see his Guru for the second time, he felt divine power, Narendra Ji stayed in contact with Ramakrishna Paramhans Ji for 6th years and after getting spiritual knowledge went from Narendra to Swami Vivekananda. Swami Ramakrishna Paramahansa died in 1886 AD. Swami Vivekananda established the Ramakrishna Mission in memory of his Guru and propagated the aims of Vedanta given by him throughout life among the people of Asia, Europe and America. In short, Swamiji spread the greatness of Hinduism by propagating emotional Vedanta in western countries and functional Vedanta in India.

The life philosophy of Swami Vivekananda is very proud and inspirational for human beings. He told that life is a struggle. In this struggle only the capable are victorious and the incapable are destroyed. Therefore, in order to survive by winning, every person should fight with every challenge of life. Swamiji used to feel very sad to see the sufferings of the then Indian people. One day he said that today we have become humble; we do everything out of fear of others.

Is seems that we have been born in the land of enemies and not in the land of friends. In the vein of Swami Vivekananda, Indian and spirituality were full of code. Therefore, the basis of his education philosophy also remained Indian Vedanta and Upanishad. He used to say that the soul resides in every living being. Recognizing this should is religion. Swamiji firmly believed that all general and spiritual knowledge lies in the mind of man. Swamiji used to say that a person does not teach another person, but he himself learns. The external teacher only offers suggestions. Due to which the inner teacher gets inspiration to explain and teach. Swamiji has said that we consider a

person educated who has passed some examinations and who can given good speeches, but the reality is that education which cannot prepare the common man for life struggle, which is not character building. What is the benefit of such education by not developing the spirit of social worker?

A Journey in to the realms of the history and civilization of India brings forth the pictures of many brilliant gems dazzling bright on account of their great and unforgettable contribution to the peculiar fields they belonged to. This paper is an attempt to depict two such shining gems and their vision, mission and contribution to the field of education in particular and a society in general. The can be described as great poets, writers, thinkers, philosophers, ideologists etc. One is Rabindranath Tagore, the poet par excellence and the other is Dr. Sarvepalli Radhakrushnan, the ex-president of India. Though they had performed their roles as a poet and as a president very efficiently a deeper look in to their lives reveals that they had been blessed with manifold hues of talents to their versatile personalities. Not only were they considered as great and successful during their lifetime, but the greatest part is that their ideas, ideals and exemplary service they have rendered to humanity had inspired numerous persons and still inspire and motivate many and the same will go on for many more years to come. The name fame and the fragrance of their inimitable personalities had spread not only to the nearby areas or countries but throughout the Universe. Hence they can be rightly described as truly ignited souls. Tagore can undoubtedly be called the wizard of poetic excellence and Dr. Radhakrushnan as the doyen of philosophic excellence. The former had delineated the beauty and depth of Indian art and literature to the entire world and the latter could popularize the Indian means, methods and approaches of life through the entire universe. These two great men are brought on the same platform here an account of their unique potential to inspire and motivate millions of people irrespective of their age, nationality, caste, creed or color.

The contributions of these two persons fall in two different fields though the outcome can be categorized as one and the same. Their thought on education, philosophical analysis of the same put forth by both of them show are quite modern and innovative approaches to transform the entire educational scenario of India. The philosophy and perspectives they held on education are quite relevant and applicable now, even in the modern Indian context also, on account of its being pertinent even now, irrespective of all the sea changes and advancement that science and technology had under gone, it is very essential to comprehend the importance educational philosophy of both of the great men is analyzed in detail. First of all let it be that of the great poetic philosopher Rabindranath Tagore. To gain insight in to this great man's vision and philosophy on education, a look at his background and personality is necessary.

Swami Vivekananda

Swami Vivekananda was a social reformer with an India-centric global vision. His views of education are rooted in traditional Indian philosophy that nurtures the ideals of harmony, compassion, tolerance and peace, and where man-making and character building are the basic objectives recognizing his contribution. UNESCO in 1973 has declared him as one of the eminent educationists of the world. Comprehending Swami Vivekananda's vision of education enquires elaboration of some of his definitions of educational terms. What a man learns is actually what he discovers within him by taking away the lid off his own soul. The main focus of the teaching learning process is to make the entire hidden potential manifest, rather manifest to the highest possible level. Thus it is critical in shaping the future of humanity.

Swami Vivekananda and "Education must provide life building, man-making, character building assimilation of ideas. The deal education will produce an awakened person the ideal one who knows how to improve his intellect, purify his emotion and stand like rock on moral virtues and unselfishness, it you have assimilated five ideas and made them your life and character. He said you have more education than the man who has memorized the whole library.

Education Philosophy of Vivekanansa

Just as Swamiji's philosophy of life is detailed and ealistic, so is his philosophy of education. He was critical of current education system and was a strong supporter of contermporary education he believed that education does not commit man to the struggle for life, but make him powerless. He himself said in his philosophy of education. We need an education by which character is formed, the strength of the mind is increased, the intellect is developed and man can stand on his own feet.

Basic Principles of Swami Vivekananda's Philosophy of Education :

Following are the basic principles of Swamiji philosophy of education:

1- Swami Vivekananda ji says that children should not be given knowledge only because studying books is not education. 2- Knowledge exists in he mind of a person, he learns by himself. 3- Mind is pure soul control of word and deed. 4- Education develops the child physically, mentally, morally and spiritually. 5- Education should be promoted among the general public. 6- Education should form the character of he child he strength of he mind should be large and the intellect should be developed so that he can stand on his feet. 7- Both boys and girls should get equal education. 8- Women should be given special religious education.

Education according to Vivekananda :

1) Aim to achieve Perfection :

According to Swamiji, the first aim of education is to achieve inherent perforation, According to him, all the worldly and spiritual knowledge is already present in he mind of man.

2) Physical and mental development :

According to Vivekanan the second aim of education is the physical and mental development of the child. He emphasized on physical purpose so that today's children can progress in future by studying Gita as a fearless and strong worrior. Emphasizing on he mental objectives, he said that we need such education by which man can stand on his own feet.

3) Spiritual and Moral developkent :

Swami Vivekananda believed that the greatness of a country does not come from its parliamentary work alone, but from the greatness of its citizens but to make citizens great, their moral and spiritual development is absolutely necessary.

4) Purpose of character building:

Vivekanada considered character building as an important objective of education. For this he stressed on following Brahmachary and told that intellectual and spiritual power would develop in man through Brahmachary and that mind would an deed.

5) Reverence and Self-sacrifice & Feeling of Self-confidence :

Swami Vivekananda throughout his life that having faith in oneself, developing the spirit of faith and self-sacrifice is the most important aim of education. He wrote airse awake and keep on

moving till that time the ultimate objectives is not achieved.

6) Religious Development :

Swamiji considered religious development as the main aim of education. He wanted everyone to know the truth or dharma that is ingrained in him. For that, he laid emphasis on training of mind and heart. And told that education should be such that by getting it children can make their life holy.

Character and building education :

Today's education is centered around career building whereas Vivekananda education scheme is centered a found character building. Every person is what his thoughts are. All thoughts conscious or unconscious if repeatedly strike the mind ultimately mould it to form habits. Character is nothing but repeated habits. Thus only be acquisition, assimilation and repetition of desirable habits. One's character is formed it is here the teachers play the most crucial role of an icon by providing exemplary leadership. The impact of the live teaching in more didactic teaching. Swami Vivekananda said words even thoughts contribute only one third influence. It is the man who makes the rest two third. A wholesome curriculum which imparts culturally approved value to the young minds is also critical in character building. It is not sufficient to teach what is good or bad, but it also needed to explain why they are so and how to discriminate between them. The classroom should be the arena for teaching of value and ethics.

Swami Vivekananda spiritual education and religion :

In Vedanta philosophy, human beings are covered with five sheaths the physical, vital, mental, intellectual and the spiritual, with the last one forming the core of character. Every soul, according to Swamiji is potentially divine and everyone's goal is to manifest the divine within. Spiritually is the manifestation of this divinity already in man. Ramakrishna, the guru of Swamiji used to say that the Bengali synonym of man is manush that is mand hush wiche symbolizes a mind with spiritual consciousness. This self actualization is possible is possible only through spiritual education.

Education should involve all domains of health physical, mental, social and spiritual with an ethical culture. But spirituality, which is the eternal principal that inspires every religion, must form the innermost core of education system. What is the use of polishing the outside when there is no inside, he said. The ultimate aim of all training is to make a man. In today's world, this spiritual consciousness translated itself as values of unselfishness ethics, compassion, tolerance, security and harmony to develop peace and democracy. As Mother Tersesa later explained. We should help a Hindu became a better hindu and Muslim to became a better Muslim and Catholic to became a better catholic. Thus, in order to improve the density of humankind, to eradicate socio-cultural dogmas, and to promote humanity education must take its roots back into the science of spirituality. To counterbalance the unequal socio-economic growth in India, he prescribed before flooding the land with socialistic or political ideas, first deluge the land with spiritual ideas. It you attempt to get secular knowledge without religion. I tell you plainly, vain is you attempt. In India.

Great Philosopher Swami Vivekanand of Education and social Justice :

His travel all over India, Swami Vivekananda was deeply moved to see the appalling poverty and backwardness of masses. He was the first modern religious guru to understand and openly declare that real cause of India's downfall was neglect of the masses. He realized that immediate

need was to provide food and other necessities to the hungry millions. For this they ought to the taught improveds of agriculture village industries etc.

Through Universal Education this was the answer that Swamiji found ultimately. Travelling through many cities and Europe and observing in them the comforts that even the poor people had, I used to shed tears. What made the difference Education was the answer I got. He stated imphatically that if the Indian society is to be reformed education has to reach everyone high and low. He said that the sense of dignity rises in a man when he becomes conscious of his inner spirit and it is very purpose of education.

Base of Education and Culture :

Every society has its outer sheath called knowledge and an inner core called culture. All students are exposed to both of these, knowingly or unknowingly to be molded and educated accordingly. Swami Vivekananda observed it is culture that absorbs shock, knowledge is only skin-deep. A little scratch brings about the old savage. Thus the importance of exposing to and teaching of human culture cannot be overemphasized in making education human friendly. According to him, the cultural values of the country should form an integral part roots in her spiritual values. The time tested values are to be imprinted in the minds and the students through the study of the epics like Ramayana. Mahabharata, Gita, Veda and Upnishads. This practice would keep the perepnial flow of Indian spiritual values alive.

Teacher :

The responsibilities of an ideal teacher are to :

1) Demounstrate, persuade and inspire the pupil to discover his potentials abilities and talents. 2) Understand of the scriptures. 3) Love, affection and empathy. 4) Dedication and commitment to the cause of education, 5) Leading by example, living a value-based life.

Principles of Morality and Ethics

Today's prevalent morally is based on fear- of the police, reasction and God's punishment, and Next life etc. the current theories of ethics also do not explain why a person should be be moral and be good to others. Swamiji has given a new theory of ethics and new principle of morality based on the intrinsic purity and oneness of the soul. We should be pure because purity is our real nature our true divine soul. Simialrly we should love and serve our neighbors because we are all one in the supermen spirit know as Paramatma. He has laugt indinas how to master Western Technology and nurture Indian Spiripually. He has taught Indians how to adapt Western humanism to Indian ethos. He made the Western people realize that they had to learn much from Indian spirituality for their own well being. He showed that in spite of her poverty and backwardness. He was India's first modern educational and cultural ambassador to the West.

Gurudev Rabindranath Tagore:

The great poet Tagore is well known as Gurudev. From his childhood itself he had manifested all the signs of a great personality in the making W.B. Yeats and all the poets and critiers and very high esteem for Tagore. To quote W.B. Yeats "No poet seems to me as famous in Europe as he is among us. He is as great in music as in poetry and his songs ae sung from the west of India in to Burma wherever Bengali is spoken. Really Yeatshas narrated the reality regarding Tagore. In his

youth Tagore wrote much of natural objects.

Gurudev Rabindranath Philosophy of Education :

While going deeper and deeper in to the life and works of Tagore, the fact that comes vividly to the fore is that the educational philosophy of Tagore was mainly the philosophy of his life itself. In this philosophy there is the sum total of the four fundamental philosophies of naturalism, Humanism, internationalism and idealism. His philosophy is a depiction of fulfillment through a harmany with all things. There are no special treatise of his on education save a few. Hence his ideas of education are manifested through his literary creation be it poetry, drama, novels short stories essays or letters. It is with the intention of materializing his philosophy and ideas of education that he established Shantiniktan, The Gurukul of his dreams in West Bengal in the year 1901. Latter it has became the well known Vishva Bharati University. The curriculum of this university was designed entirely on fulfilling the dreams and vision of Tagore on education. Like the contribution of Mahatma Jyotirao Fule in Maharashtra towards education of women and empowering term. Tagore too had his share on women education. He paved the way for establishing equal rights of education for both men and women. Tagore was bent on nurturing the cultural and aesthetic side of student, thus he promoted the role of extracurricular activities in education from then on words. Thus he insisted on realizing the all around development of the individual from his school day itself. He wanted to mould a student in to a universal man. As he was well aware of the fact that the useful and beautiful are interconnected he expected that the students should undergo the creative thrill of transforming the useful in to the beautiful. As all the major aspects of Tagore's thoughts and philosophy on education are dealt with now let us have a look at Dr. Sarvepalli Radhakrushnan.

Life Philosophy of Dr. Sarvepalli Radhakrushnan

Dr. Radhakrushana born at Chithoor, Tiruthoni was a great genius who was well-versed in many languages like Telugu, English, French, Tamil, Sanskrit, Bengali and Hindi. After studying philosophy from Presidency College Madras, be worked as a professor in the University of Mysore as well as in the University of Calcutta. He was the Professor of Eastern Religions and Ethics on Oxfore Univery. Londan. Along with his entire academic achievements, he served as the vice-President and also as the President of India. As close look in to his life and great contributions he made as a man, as a national leader and as an educationist reveals that he was a real genius, a multifaceted personality in the true sense of the terms. At present Dr. Radhakrushnan is popularly known for his services as an outstanding teacher a well known philosopher and an admirable statesmen in the chair of Prisdency and Vice-Presidency Because of this expertise in classical Indian Philosophy and thought he could explore how modern Indian education be shaped most effectively.

Dr. Sarvepalli Radhakrushnan's Educational Philosopy

While looking at the contribution of Dr. as an educationist, it is seen that undoubtedly he had contributed immensely in this real, In his opinion education has to be imparted with the intention of promoting the spiritual resources of humanity. He believed that by providing the right type of education all the bad habits and vices can be removed from human mind. It can be rightly seen that the educational philosophy of this great philosopher was rooted in he ancient Indian traditions and it had its base on the philosophy of idealism Just like the vision and ideals of Rabindranath Tagore regarding

education. Thus the essence of education was almost the same as far as these two thinkers are concerned. Dr. Radhakrushnan held the view that education is a lifelong process. He visualized that education should ensure a society free from caste, creed, color and establish equality among all sections of society. As he wanted that it must be associated with the realities of life he advocated the training of democracy.

Similarties of Thoughts in Swami Vivekanand, Rabindranath Tagore and Dr. Sarvpalli Radhakrushan

While going through the educational thoughts of Swami Vivekanand ,Rabindrnath and Dr. Sarvepalli Radhakushnan, many similarities in their opinions had come to fore. The major reason for this can be seen in the fact that Dr. Radhakrushnan had immensely been influenced by he philosophy of Tagore. It is not at all surprising to see that both of these great thinkers and followed the ancient Indian tradition of Vedanta and Upanishad. On account of this great influence, both of them were able to execute this in their respective fields in the form of flesh and blood. This enabled Tagore to bring his Shantiniketan in to full bloom and Swamiji and Radhakrushanan had utilized this for his recommendations of university Education commission. For both Tagore and Radhakrushnan, education Similarly both of them were in favour of imparting vocational and professional training to students to turn them in to useful members of the society. More than everything else, both these great men aspired to gain international co-operation and mental tolerance on account of education to ensure a feeling of harmony and universal brotherhood. Both of them strove hard to broaden the scope of education and provided students with more choices of subjects at their disposal.

Conclusion : The tremendous explosion of information without commernsurese wisdom. And immense power not tempered with compasson, toterance, ethics or humility has made today's education a potentital source of disaster. On this Swamiji remarked. Hundreds of sciences have been discovered. The sole effect is that a few have made slaves of many. That is all the good that has been done. Artificial wants have been created. Every poor man whether he has money or not. Desiries to have those wants fulfilled. When he can not he struggles and dies in that struggle.

Those prophetic predictions are truer today. Today's education not only neglects training of mind but also negates all spiritual values. Brains are stuffed with indiscriminate information. Education no longer stimulates one's thinking process. This obscures assimilation of information into knowledge and knowledge into wisdom. A moving storehouse of information is more encouraged today than cultivated humanity. On this, the visionary lamented, Proper education is yet to be started in today's world. And civilization had begun nonwhere yet. He conceived civilization as manifestation of the divine within all individuals of the society. Unforunately til date, no society has made much progress into it. Morality is more lacking amongst the educated privileged few. Gentleness comparison tolerance have disappeared. One of the most significant contributions of Swami Vivekananada to the modern world is his interpretation of religion and spirituality as the core of education. Swamiji met the challenge of modern sciences by showing that religion is as scienctific as science itself. Religion is the science of consciousness. As such, religion and science are not contradictory to each other but are complementary. This universal conception frees religion from the hold superstitions, dogmatism, conflicts ethnic confrontations and intolerance. It makes spirituallty the highest and noblest pusuit the pursuit of spreme emancipation supreme knowledge and supeme bliss.

Swamiji's mission of empowerment of the unprivileged through spiritual education is echoed in his speech, teach yourself, teach everyone his real nature, call upon the sleeping soul and see how it

awakes. Power will come, glory will come, goodness will come purity will come and everything that is excellent will come when this sleeping soul is roused to self conscious activity. Swamiji vision of education is life-building man making and character building. His vision of an ideal man is where all the elements of Philosophy, mysticism, emotion and work are blended equally. Values ethics morality compassion tolerance, secularity are higher in his agenda of education. Century later (1973) UNESCO report learning to be defines education in he same light. It reads the Physical intellectual ethical and emotional integration of the individual into a complete man is the broad definition of the aim of education. There is a remarkable similarily between present concerns of the world and Swami Vivekananda's education objectives.

Afther an in depth study and analysis of the educational philosophies of both Rabindranath Tagore and Dr. Sarvepalli Radhakrushnan it is observed that, both these great educationists had regarded education as the best and most effective weapon for the modernization of our society. Though they hailed from different spheres of life. They envisioned the uplift-ment of the human civilization through education and supported the incorporation of different ideals of democracy in to education. Their educational thoughts and philosophy still belong to the 21st century and can be considered as quite relevant because whatever they advocated still found a place in the hearts and minds of countless modern minds. Quite aptly these two giants of education can be considered as the exponents of modern Indian education. Their contribution to make our education system what it is today. Is unparallel and unforgettable.

There is a remarkable similarily between present concerns of the world and Swami Viveknanada's educational objectives.

1- His propagation of humanity in education thus propagating universally of values, secularism and tolerance as character. 2- His preaching of compassion and love, finding God in the sufferers and also in every living soul. 3- His idea of education for all free and compulsory mass education.

References :

1. Sudharama J (2009), Educational Thoughts of Swami Viveknanda ed. 1, Crescent Publising Cor-oporation, New Delhi.
2. Sami L (1996), My India : The India Eternal Ramkrishna Mission Institute of Culture, Calcutta.
3. Swami V (1971). Teaching of Swami Vivekananda.
4. Swami V (1976). Powers of the mind. Vi H. Foundation
5. Swami V (2009). Bhagvad Gita as Viewed by Swami Vivekananda vi. H Foundation
6. Swami V (2010). Prsonality development. Vi h. Fondation New Delhi
7. Pani SP, Pattnaik SK (2006). Viveknanda. Aurbindo and Gandhi on Education, Anmol Publications Pvt. Ltd New Delhi.
8. Martin L King J, The Maroon Tigger (1947). The Purpose of Education- Speech Atlanta USA
9. Johari PK (2005). Educational Thoughts. Anmol Publications Pvt. Ltd. New Delhi.-238.
10. Swami V. My idea of education.
11. Ray, S. (1961), Portraint of Man, A centenary Tribute to Tagoe, Courier, UNESCO.
12. Behera, D.K. (2010), The Great Indian Philosopher- Dr. Radhakrushnan, Orissa Review Septermber.
13. The Report of the University Education Commission, 1948-1949 Ministry of Education Govt. of India.
14. Jalan, R.V. (1976) Tagore- His educational Therory and Practice and Impact on Indian Education PH. D Dissertion University of Florida U.S.A
15. Joshi, S (2006) Great India Educational Thinkers Author Press Delhi.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नगरीकरण के प्रसार से उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याएँ (हनुमानगढ जिले के विशेष सन्दर्भ में)

कल्पना
सहायक आचार्य भूगोल
राजकीय कन्या महाविद्यालय- हनुमानगढ जंक्शन (विद्या संबल)
ई-मेल-: pawan.suthr.pawan225@gmail.com
Mob. No. 7597058859

सारांश

कोई भी छोटी बस्ती जहाँ कम से कम 20 से ज्यादा कच्चे मकान हो, जहाँ पर सफाई, पेयजल, बिजली एवं रहन-सहन की सुविधा ना हो सर्वेक्षण की दृष्टि से मलिन बस्ती कहलाती है। मलिन बस्ती के उद्भव होने का प्रमुख कारण नगरीकरण का प्रसार माना जाता है। बढती जनसंख्या के संकुल के कारण नगरीकरण का विस्तार हो जाता है। जो मलिन बस्तियों के साथ-साथ विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में हनुमानगढ जिले में नगरीकरण से उत्पन्न होने वाली प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा नगरीकरण के क्या दुष्परिणाम हो सकते है। इसकी व्याख्या की गई है।

प्रस्तावना

वर्तमान समय मे भौतिक सुख-सुविधाएँ मानव जीवन का प्रमुख आधार मानी जाती है। भौतिकता मानव जीवन के सैद्धान्तिक पक्षों का उल्लघन करती है। परन्तु बिना भौतिक सुख सुविधाओ के मानव जीवन की कल्पना करना मुश्किल पक्ष माना जाता है। भौतिकवादिता का प्रमुख कारण शहरीकरण तथा नगरीकरण माना जाता है। जो जीवन को भौतिकता की ओर अग्रसर करता है। ग्रामीण जीवन की सादगी को छोड़कर नगरीय आकर्षण से आकर्षित होकर लोग शहरो से नगरों की ओर प्रस्थान करते है प्रवासियो की बढ़ती संख्या तथा जनसंख्या के बढते दबाव के कारण नगरीकरण के अभिकेन्द्रो तथा बाह्य केन्द्रो पर विभिन्न प्रकार की समस्याओ का जन्म होता है। नगरीकरण प्राथमिक क्रियाओ को छोड़कर, तृतीयक, चतुर्थक व पंचम क्रियाकलापो को प्रमुख स्थान देता है। विकासशील देशों में विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा, नगरीकरण की समस्या प्रमुख स्थान रखती है। नगरीय केन्द्रों में बहुराष्ट्रीय कम्पनीयो के ऑफिस, उच्च शिक्षण संस्थान विकसित व अर्धविकसित बस्तियाँ इत्यादि नगरीय धुर्वीकरण को जन्म देती है।

भारत में महाराष्ट्र, जयपुर, उतरप्रदेश, कर्नाटक गुजरात नगरीय केन्द्रों को विकसित करने वाले महत्वपूर्ण राज्य माने जाते है। जो देश को विकसित होने की सुचना की ओर अग्रसर करते है प्रस्तुत शोध पत्र में नगरीकरण की प्रक्रिया से पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। तथा इसमे कैसे सुधार लाया जाए। इसका दृष्टिपात किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य हनुमानगढ शहर मे मलिन बस्तियों के पनपने एवं उनको समस्याओं का परीक्षण करना तथा नगरीकरण की प्रक्रिया में इन बस्तियों व औद्योगिक केन्द्रों का विकास की तरीके से पर्यावरण को प्रदूषित करता है। तथा उसे कैसे रोका जाए। इसका अध्ययन करना।

2. नगरीकरण की प्रक्रिया से शहरीकरण के कौन से तत्व सक्रिय हो जाते है। इसका अध्ययन करना।

3. नगरीकरण से समाज व सामाजिक पर्यावरण की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसका अध्ययन करना।

4. नगरीकरण की सामान्य समस्या किस तरह एक विकराल स्वरूप लेती है यदि उसका समय पर समाधान ना किया जाए, इसका अध्ययन करना।

शोद्य विधि तन्त्र

प्रस्तुत शोध पत्र में हनुमानगढ जिले में शहरीकरण से नगरीकरण की ओर विकसित होने पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं का निराकरण हेतु विशलेशण प्रस्तुत किया गया है। प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित आंकड़ो का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओ से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण को विभिन्न शोध कार्यो में प्रस्तुत किए गए है। उनका अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न वेबसाइट से प्राप्त आंकड़ो का भी संकलन इस अध्ययन में किया गया है।

परिचय

हनुमानगढ जिले का गठन 12-07-1994 को श्रीगंगानगर जिले से राजस्थान राज्य के 31 वे जिले के रूप में किया गया था जिला मुख्यालय घग्गर नदी के तट पर स्थित है, जो अन्तिम पौराणिक नदी सरस्वती का वर्तमान स्वरूप है। घग्गर नदी जिसे नाली भी कहा जाता है। जो जिला मुख्यालय को दो भागो मे विभाजित करती है। घग्गर नदी के उतर मे हनुमानगढ टाउन तथा दक्षिण मे हनुमानगढ जंक्षन स्थित है। हनुमानगढ टाउन व्यव्यासायिक गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र है। जिला कलेक्टर सहित अन्य मुख्यालय जंक्षन मे स्थित है।

वर्ष 1805 मे बीकानेर के शाशक सुरत सिंह ने भाटियों को हराकर भटनेर पर अधिकार कर लिया तथा मंगलवार को विजित करने के कारण भटनेर को हनुमानगढ नाम से परिचित किया। प्राचिन सभ्यता सिन्धु सभ्यता के अवशेष इस नगर के कालीबंगा से प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त यह प्रदेश वर्तमान मे अपनी विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियो तथा औद्योगिक केन्द्रो के लिए प्रसिद्ध है। इसका कुल क्षेत्रफल 12645 वर्ग कि.मी. है इस प्रदेश की कुल आबादी 1774692 (2011) के अनुसार है। औसत जनसंख्या घनत्व 184 व्यक्ति/की.मी. है। हनुमानगढ जिला पंचायत क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कुल 7 पंचायत समितियाँ 268 ग्राम पंचायते और 1905 गाँव है। इस क्षेत्र मे 7 तहसीलें हैं।

हनुमानगढ में बढ़ता नगरीकरण व उसके प्रभाव

नगरीकरण उस दशा का प्राथमिक स्वरूप है। जिसमें नगरीय गतिविधियाँ विकसित हो जाती है। जो आस-पास के गाँवों के लोगों की आवश्यकता को पूरा करती है। नगरीय बस्ती का प्रारम्भिक स्तर कस्बा कहलाता है। धीरे धीरे कस्बे से नगर-नगर से महानगर का दर्जा प्राप्त हो जाता है। नगरीय बस्तिया जनसंख्या के जमघर होती है। जो गैर प्राथमिक क्रियाओं से संलग्न रहती है। धीरे-धीरे जनसंख्या वृद्धि व नगरीय अभिकेन्द्रों में स्थान के अभाव के कारण नगर के बाहर विभिन्न मानवीय बस्तियां बस जाती है। जो विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय प्रभाव को दर्शाती है।

प्रभाव

मलिन बस्तियो का उद्भव

ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में आने वाली जनसंख्या सामान्यता रहने की सुविधा के अभाव में अनौपचारिक रूप से विभिन्न मलिन बस्तियो का प्रभाव औद्योगिककरण व उच्च रिहायशी क्षेत्रो के बाहर होता है। आमदनी कम होने के कारण झुग्गी झोंपड़ी के निवासी मजदूरी ही करते है। अनपढ़ता व असाक्षरता इसका दूसरा पहलु मानी जाती है।

मलिन बस्ति शब्द का चलन 18 वी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ मलिन बस्तियो को टर्की में गैसकॉन्ड, मैक्सिको में इन्हें कालोनीज, पेरू में बैरियादास, चेन्नेई में चेरिज, व राजस्थान में कच्ची बस्ती कहा जाता है।

अनियंत्रित औद्योगिकरण

नगरीकरण की प्रक्रिया विकासशील देशों में विभिन्न समस्याओं को जन्म देती है। जिनमे अनियंत्रित औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रमुख है। तकनीकी अभाव के कारण या संसाधनों की पूर्ति न होने के कारण लघु औद्योगिक ईकाइया नगर के केन्द्र से परिधि की आर धीरे-धीरे विकसित हो जाती है लेकिन अनियत्रित क्रियाओ से नगरो में विभिन्न समस्याओ को जन्म देती है। अध्ययन क्षेत्र में नगरीकरण का प्रभाव 2014 के पश्चात अत्यधिक दिखाई देने लगा है, जिसका प्रमुख कारण नवीन व्यसायिक नीतियों का निर्माण तथा वितीय सहायता मे नवीनता व लचीलापन और ऋण की सुविधा नगरीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भुमिका निभाती हुई प्रतीत होती है। उपरोक्त नीतियों से औद्योगिकरण अनियत्रित रूप से विकसित हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न नगरीय समस्याओं का जन्म होता है। जो एक चिंता का विषय है।

पर्यावरण प्रदूषण

नगरीकरण की प्रक्रिया मे उद्योगों के विकास एक ओर प्रगति को दिखाते है, वही दुसरी ओर पर्यावरण अवनयन को जन्म देते है।

नगरीकरण की प्रक्रिया से विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ देखने को मिलती है। जिसने वायुप्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनी प्रदूषण की समस्या प्रमुख मानी जाती है। नगरीय बहिस्त्राव का ग्रामीण क्षेत्रो की कृषि युक्त भुमि मे छोड़ा जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे भुमि प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसके अलावा भूमिगत मे भिन्न प्रकार के घातक प्रदुषक मिलने से उसकी गुणवता मे कमी आती जा रही है।

भूमिगत जल का स्तर भी धीरे धीरे कम होता जा रहा है।

समाजिक प्रभाव

मलिन बस्तियों के नगरीकरण के बाहर उद्भव होने से विभिन्न सामाजिक समस्याएँ जैसे नशावृत्ति, अपराध, वेश्यावृत्ति, इत्यादि का उदभव होता है। जो भविष्य में घातक सिद्ध होती है, नगरीकरण के विकास में। इसके अलावा अनियोजित आवास, घरेलु बहिस्त्राव से विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न होती है। नगरीकरण की आधुनिकता से विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न होती है।

नगरीकरण की आधुनिकता से विभिन्न प्रकार के सामाजिक परम्पराए व रीति रिवाज समाप्त हो रहे है, एक परिवार प्रथा का चलन, पारिवारिक कलह व मानसिक तनाव का कारण बन चुका है। अध्ययन क्षेत्र की 25% से ज्यादा जनसंख्या विभिन्न प्रकार के सामाजिक व मानसिक तनावों से ग्रसित है। जो मानव के सामाजिक जीवन पर प्रभाव डाल रही है।

आर्थिक प्रभाव

आर्थिक प्रभाव भी नगरीकरण का प्रमुख कारक माना जाता है। लेकिन इस आधुनिकता व नगरीकरण की अन्धी दौड़ मे सामाजिक प्रभावो से प्रभावित होकर दिखावे को प्रदर्शित करने हेतु, विभिन्न प्रकार के कर्ज लेता है। जो भविश्य मे म्डप् अन्य ब्याज दरो मे आर्थिक संकट की स्थिति को जन्म देते है।

नगरीकरण के विकास के लिए महत्वपूर्ण उपाय

नगरीकरण का विकास मानव जीवन के लिए है। लेकिन इसे नियोजित तरीके से बसाव के रूप मे संचारित करना चाहिए। इसके अलावा इसे विभिन्न नीतियों के तहत एक मास्टर प्लान के तहत बसाना चाहिए। जिससे मानव विकास के साथ साथ नगरीकरण की प्रक्रिया की सुचारू रूप से संचालित हो सके।

मलिन बस्तियों में सुविधाएँ प्रदान करवानी चाहिए जिससे सामाजिक, मानवीय, व पर्यावरणीय समस्याओ से छुटकारा पाया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सक्सेना ए॰सी॰ - 1993 श्रम समस्याएं एवं सामाजिक सुरक्षा रस्तोगी प्रकाशन दिल्ली।
2. आहुजा राम - 1967 भारतीय समाज अतीत से वर्तमान तक मनमोहनदास, पुस्तक मन्दिर प्राईवेट लि॰ भरतपुर।
3. सक्सेना आआ - 2009 मलिन बस्तियो की महिलाओ एक पुलिस क्लासिकल पब्लिकेशन।
4. यादव नीलम, यादव मीना रानी, यादव दीदार सिंह(2009)-: मलिन बस्तियो के वासियो की आर्थिक व सामाजिक दशायें सत्यम् पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली।
5. लाल कृष्ण (2013) -: लघु शोद्य प्रबन्ध (राजस्थान के हनुमानगढ व हरियाणा के सिरसा जिले की जनसंख्या का तुलनात्मक अध्ययन)
6. शर्मा योगेन्द्र–पर्यावरण संरक्षण, लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज (2005)
7. तिवारी ए॰ -: 2014 जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण सुरक्षा कृष्ण पब्लिकेशन व प्रिटिंग प्रेस।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में राजनैतिक परिवेश

Dr. Jinu John
Assistant Professor, Department of Hindi
Mar Athanasius College (Autonomous)
Kothamangalam, Ernakulam (District) Kerala - 686666
email : jinuj@macollege.in, Mob. No - 9526864182

हमारे स्वतंत्रता संग्राम की रूपरेखा से सभी सुपरिचित है। हम आज स्वतंत्र भारत में रहते हैं और यह जानना ज़रूरी है की इस स्वतंत्रता को पाने केलिए कितना खून-पसीना बहाया गया है। जिन्होंने स्वतंत्रता को प्राप्त करने में तकलीफें सहीं और बलिदान दिये, उन लोगों के प्रति श्रद्धान्जली अर्पित करना हमारा धर्म हैं।

विश्व के इतिहास में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सन 1757 के प्लासी युद्ध के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में पूर्ण रूप से पैर जमाया था। धीरे-धीरे भारतीय सौदागर बहार किए जाते रहे। ब्रिटिश शासन के हानिकारक प्रभाव ने भारत में भारतवासियों ने एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन के उद्भव और विकास को रूप दिया।

भारत के राजनैतिक इतिहास देखे जाए तो यह समझ होगा कि स्वतंत्रता के पूर्व भारत में एक प्रकार का बिरादराना है जैसे लोगों के बीच और राज्यों के बीच। लोगों और नेताओं ने अपने राज्य केलिए लडती है। लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। अमानवीयता, सांप्रदायिकता जैसे सामाजिक खतरें हर कोने में देखा जा सकता है। मनुष्य मनुष्यों के बीच, नेताओं नेता के बीच, धर्म के बीच, सिद्धान्तों के बीच कलाप चल रही है। लोगों ने या नेताओं ने राजनीति को अपना जेब भरने का माध्यम बनाया है। राजनीति का अधपतन का कारण प्रयागकर्ताओं का आभाव है। मनुष्य मनीषी को इस्तेमाल कर प्रगति की ओर चलनी चाहिए।

वर्तमान युग में राजनीति समाज का एक प्रधान अंग है। साहित्य का राजनीति से घर संबन्ध है। भगवतीचरण वर्मा अपने उपन्यासों में अपने युग का पुनः सृजन किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व की और स्वतंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों को अभिव्यक्त की है। युग की समग्र राजनीतिक झाँकी उनके उपन्यासों में रूपायित है। भारत की स्वतंत्रता संग्राम उनके उपन्यास साहित्य की पृष्ठभूमि है। उनके साहित्य में जो राजनीति का स्वर उभरा है, वह तो न प्रचारवादी है, न किसी पार्टी का पक्षधर बनकर आया है, अपितु युग का यथार्थ चित्र है। भगवतीचरण वर्मा अनेक राजनीति उपन्यास लिखते है, उनमें प्रमुख है—भूले बिसरे चित्र, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सीधी-सच्ची बातें, प्रश्न और मरीचिका, वह फिर नहीं आई, सामर्थ्य और सीमा, सबहिं नचावत राम गोसाई आदि।

भूले बिसरे चित्र

'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा के बृहद उपन्यासों में एक है। इस उपन्यास में सन 1885 से 1930 तक की

तत्कालीन जीवन का चित्रण किया है। इसमें मुख्यतः मध्यवर्ग के उदभव और विकास, संयुक्त परिवार प्रथा के विघटन, पूँजीवाद के अभ्युदय, सामन्तवाद के ह्रास, राजनीतिक गतिविधियों और बदलते जीवन मूल्यों को प्रमुखता दी हैं।

ये उपन्यास पांच खण्डों में विभक्त है। मुंशी शिवलाल के परिवार की चार पीढियों को माध्यम बनाकर तत्कालीन भारतीय जीवन का चित्रण करने का प्रयास किया है। परिवर्तित परिस्थियाँ एक परिवार पर कैसे प्रभाव पड़ता है , और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके स्वभाव, मनोवृत्ति और आचरण में क्या अन्तर आता-जाता है, इसका कलात्मक चित्रण इस उपन्यास में उपस्थित है। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास की कथा 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना से प्रारंभ होती है।

मुंशी शिवलाल एक सामान्य अर्जीनवीस थे। उनकी चाटुकारिता और तिकड़मों के बल पर अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदार बनवा देते है। नायब तहसीलदारी उस युग में किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए वरदान थी। पूँजीवादी युग में पैसा ही शक्ति और अधिकार का मापदंड बन गया है। मुंशी शिवलाल अपने भाई राधेलाल के परिवार के साथ संयुक्त रूप में रहते है। राधेलाल ज्वालाप्रसाद को शोषण करते-करते चली जा रही है। ज्वालाप्रसाद का घर पारिवारिक कलह की आग से जलने लगा। पिता (मुंशी शिवलाल) के बलिदान के बाद भी पारिवारिक कलह शांत नहीं होता। यहाँ मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार का विघटन हो चुका था।

ज्वालाप्रसाद का संबन्ध जैदेई से होता है, उन्होंने गंगाप्रसाद की हर सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए उसे उच्च शिक्षा दिलवाती है। गंगाप्रसाद डिप्टी कलक्टर बन जाता है। एक सरकारी अफसर के रूप में उसे पर्याप्त सफलता मिलती है। लेकिन सुरा-सुन्दरी के जाल में फँसकर उसमें डूबा ही जाता है।

ज्वालाप्रसाद गाँधीजी से आस्था रखनेवाला व्यक्ति है। गंगाप्रसाद भारतीयों की निस्सहाय स्थिति देखी और उसका अनुभव किया– "अंग्रेज सैनिक जगह-जगह घूम रहे थे, हँस रहे थे, गा रहे थे, आपस में मजाक कर रहे थे। वे कभी-कभी पंजाब पुलिस के लम्बे सुडौल जवानों को गालियाँ दे देते थे, और ये लोग चुप-चाप गालियाँ सुन लेते थे। शाम हो गई थी और उस नगर का निर्माण करनेवाले हजारों मजदूर थके और टूटे हुए बीस - पचीस का गोल बनाकर लौट रहेथे।"[1] प्रथम विश्वयुद्ध की लहर भारतीय जन जीवन में अनेक रूपों में प्रभावित थी। भारतीय जनता ने विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों को सहयोग दिया , लेकिन उनको कृतज्ञता के बजाय दमनकारी कानूनों का शिकार बनना पड़ा।

भारतीयों ने अपने देश को प्रगति की ओर ले जाना चाहते थे। परंतु अंग्रेजों ने भारतीयों के बीच में सघर्ष बढ़ती गई। गाँधीजी पर आस्था रखनेवाला, उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाला ज्ञानप्रकाश स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए भारत वापस आती है। उन्होंने कहा– "मैं कल अमृतसर केलिए रवाना हो रहा हूँ। आज 22 दिसम्बर है, 26 दिसम्बर से वहाँ कांग्रेस हो रही है। हमारे देश में जो नई चेतना आ रही है, उसके दर्शन तो मैं करना ही चाहता हूँ। जलियाँवला बाग का हत्याकांड इसी अमृतसर में हुआ था , जहाँ यह कांग्रेस हो रही है।"[2] गंगाप्रसाद कांग्रेस छोड़ने का पस्ताव प्रकट करते समय ज्ञानप्रकाश ने कहा– "बिलकुल यही बात तुमसे सुनने की आशा थी बरखुरदार। डिप्टी कलक्टर हो न। मौज करते हो चौन की ज़िन्दगी है। लेकिन मुझसे पूछो मैं जो योरोप से लौट रहा हूँ। हम लोग गुलाम हैं, हम लोग असभ्य हैं , हम लोग अछूत हैं। तुमने यह सब अनुभव नहीं किया क्योंकि तुम्हें हिन्दुस्तान से बाहर निकलकर यह सब अनुभव करने का मौका ही नहीं मिला। लाखों आदमियों का भाग्य– विधाता बनकर तुम्हें अधिकार– मद में धुत बना दिया गया है।"[3] 'रौलट एक्ट' ने गाँधीजी को राजद्रोही बना दिया। गाँधीजी ने सत्याग्रह करने की घोषणा की। गाँधीजी की घोषणा से हड़तालें हुई। इसमें मुसलमानों तथा हिन्दुओं ने साथ-साथ भाग लिया। हिन्दू–मुस्लिम एकता के बारे में ज्ञानप्रकाश कहता है– "असहयोग एक तरह से आरंभ हो गया है। इस असहयोग को खिलाफत-आन्दोलन से बहुत बड़ा बल प्राप्त हुआ है। देश के मुसलमानों में इस समय अंग्रेजों के विरुद्ध प्रबल भावना जाग उठी है। मद्रास में जो खिलाफत-परिषद् हुई थी; उसमें देश के मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया है। ये मुसलमान मूलतः भारतवर्ष के निवासी है, यह भी मुसलमानों ने अनुभव कर लिया है। ....बड़ी मुश्किल से अब जाकर कहीं हिन्दू-मुसलमानों को एक हो पाया है। हमें इस मौके का फायदा उठाना चाहिए और हिन्दू-मुस्लिम एकता की जड़ों को मजबूत कर लेना चाहिए।"[3] हिन्दू-मुस्लिम एकता ने राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया।

1922 के समय कांग्रेस की बागडोर पूरी तरह गाँधीजी के हाथों में आ गई। आन्दोलन में नारियों ने भी पुरुषों के साथ भाग लिया और जेल तक जाती है। माया शर्मा और गंगादेवी इसका उदाहारण है। सामूहिक आन्दोलन का भयानक रूप 'चौरीचौरा' पर देखा जा सकता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता को नष्ट करने केलिए अंग्रेजों ने काम किया। असहयोग आन्दोलन की असफलता मध्यवर्ग को आतंकवाद की ओर ले जा। गाँधीजीके नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई लड़ता रहा। क्रान्तिकारी लोगों के साहसपूर्ण कृत्यों द्वारा देश के जन-जीवन में नई स्फूर्ति आई। 1929 में कांग्रेस का ऐतिहासिक सम्मेलन लाहौर में हुआ। 12 मार्च 1930 को गाँधीजी ने अपनी ऐतिहासिक दण्डी यात्रा आरंभ की। 'नवल किशोर' और 'ज्ञानप्रकाश' नमक कानून भंग करते हैं और जेल में जाते हैं। "नवल ने अपने अन्दर एक नई उमंग को धीरे-धीरे जन्म लेते हुए अनुभव किया। जिस समय वह मंच पर पहुँचा , उसके अन्दर एक तरह की घबराहट थी। वह घबराहट दूर हो गई; अब एक नई दृढ़ता उसके अन्दर आ गई और कुछ थोड़ी देर बाद नवल को लगा कि वह एकाएक बदल गया; एक अस्सीम उल्लास, एक अडिग संकल्प।"[5] गाँधीजी के प्रति नवल की आस्था देखकर भीखू ने कहा—"ई नवल बिटवा अपनी खुशी से जेल जाय रहा है ....ई विद्या बिटिया नौकरीकर लगी है। समझ माँ नहीं आवत है भइया, ई सबका हुई रहा है।"[7] सत्याग्रहियों का जुलूस जब नवल को लेने ज्वालाप्रसाद के मकान के सामने आता है तब भीखू और ज्वालाप्रसाद नए युग की नई चेतना के प्रतीक के रूप में इस जुलूस का स्वागत करते हैं। यहीं उपन्यास की समाप्ति होती है।

निष्कर्ष

बीसवीं सदी के 1928 के आसपास से भगवतीचरण वर्मा की रचना यात्रा आरंभ होती है।भारत के सामाजिक-राजनैतिक परिप्रेक्ष्य को लेने पर इनका रचनाकाल स्वतंत्रता से पूर्व दो दशकों को और स्वातंत्र्योत्तर युग के तीन दशक से अधिक का समय अपनाता है। लगभग छह दशकों की सामाजिक-राजनैतिक पारिस्थितियाँ भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में अपने ढंग से उभारी गई है।

भगवतीचरण वर्मा के लेखन का समय वस्तुतः प्रथम विश्व महायुद्ध से आरंभ होता है तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध तक चलता है। इस बीच की राजनैतिक परिस्थितीयाँ इन उपन्यासों में प्रतिफलित होती है। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' की पृष्ठभूमि 1885 से 1930 तक का समय है। इसमें चार पीढियों की कथा कहता है। इन चार पीढियों के माध्यम से तत्कालीन भारत का चित्र देखा जा सकता है।

आज हमारी राजनैतिक व्यवस्था भ्रष्टाचार के कारण अनैतिक और खोखली बन गई है। गाँधीजी के समय लक्ष्यों की श्रेष्ठता होती है, लेकिन अब लक्ष्यों में कमियाँ है। सभी क्षेत्र में भ्रष्टाचार बढ़ा है। आज की राजनीति में दूरदर्शी और दूरगामी नीतियों का आभाव है, तत्कालीन लाभ की दृष्टी से उसमे आसानी से परिवर्तन किये जा सकते है। धर्म के प्रति लोगों की अश्रद्धा बढ़ रही है, अनैतिकता बढ़ रही है, अपराध बढ़ रहे है, अव्यवस्था और अराजकता सारी दुनिया में फैल रही है। राजनीति बदल रही है।

संदर्भ ग्रन्थसूची

1. भूले बिसरे चित्र - भगवतीचरण वर्मा
2. आज़ादी के पचास साल— विश्वप्रकाश गुप्ता,मोहिनी गुप्ता
3. भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास— शिवानी गुप्ता
4. हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन— ब्रजभूषण सिंह आदर्श
5. स्वतंत्रता संग्राम— विपन चन्द्र
6. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना— बैजनाथ प्रसाद शुक्ल
7. उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा— डॉ.ब्रजनारायण सिंह

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

विद्यापति के काव्य में प्रकृति-चित्रण

नयन कुमारी
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय
वैशाली, बिहार

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
शोध निदेशक एवं सह प्राध्यापक
हिंदी विभाग, डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय
वैशाली, बिहार

शोध सार : वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग के गीतिकाव्यों तक में प्रकृति के विविध रूप चित्रित हुए हैं। भारतीय प्रकृति काव्य अत्यंत समृद्ध रहा है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर मनोहारी चित्रण किया गया है। हिन्दी साहित्य में मुख्यतः हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण से भरा हुआ है। मानव का प्रकृति से सम्बन्ध सृष्टि के आरम्भ से ही रहा है। विद्यापति का प्रकृति चित्रण बहुत कुछ परम्परागत रूढ़ियों व नियमों पर आधारित है। उन्होंने प्रकृति का दो रूपों में वर्णन किया है– वर्ण्य विषय या आलम्बन रूप में और नायक नायिका के भावों को उनके संयोग- वियोग के अनुसार उद्दीपन रूप में। विद्यापति का प्रकृति चित्रण न केवल उनके काव्य की सौंदर्यता को बढ़ाता है, बल्कि इसे मानवीय संवेदनाओं और अनुभवों से जोड़ता है। विद्यापति ने प्रकृति को प्रेम और भक्ति का माध्यम बनाकर अपनी रचनाओं को अनोखा और कालजयी बनाया।

कुंजी शब्द : गीतिकाव्य, सहचरी, आलम्बन, उद्दीपन, नैसर्गिक, विरहिणी, बिम्बात्मक, वियोग शृंगार।

अध्ययन के उद्देश्य

- विद्यापति के काव्य में प्रकृति- चित्रण की विविधताओं का सम्यक व्याख्या करना
- विद्यापति के प्रकृति वर्णन को मानवीय सम्वेदनाओं के प्रकटीकरण सन्दर्भो में विश्लेषण करना

अध्ययन विधि : प्रस्तुत शोध मुख्य रूप से अध्ययन और विश्लेषण पर आधारित है। इस शोध कार्य में मैथिल कोकिल विद्यापति की कृतियों एवं सम्बन्धित अन्य लेखकों द्वारा प्रकाशित सामग्री को अध्ययन के रूप में ग्रहण किया गया है।

मूल आलेख : प्रकृति आदिकाल से ही मनुष्य की सहचरी रही है। समस्त भारतीय साहित्य में प्रकृति चित्रण की विशेष परम्परा रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग के गीतिकाव्यों तक में प्रकृति के नाना रूप चित्रण हुए हैं। भारतीय प्रकृति काव्य अत्यंत समृद्ध रहा है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर मनोहारी चित्रण किया गया है। वाल्मीकि और कालिदास का काव्य प्रकृति के विविध चित्रों की कला-दीर्घा है। हिन्दी साहित्य में मुख्यतः हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण से भरा हुआ है। मानव का प्रकृति से सम्बन्ध सृष्टि के आरम्भ से ही रहा है। प्रकृति आदिकाल से ही मनुष्य की सहचरी रही है। समस्त भारतीय साहित्य में प्रकृति चित्रण की विशेष परम्परा रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग के गीतिकाव्यों तक में प्रकृति के नाना रूप चित्रण हुए हैं। भारतीय प्रकृति काव्य अत्यंत समृद्ध रहा है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर मनोहारी चित्रण किया गया है। वाल्मीकि और कालिदास का काव्य प्रकृति के विविध चित्रों की कला-दीर्घा है। हिन्दी साहित्य में मुख्यतः हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण से भरा हुआ है। मानव का प्रकृति से सम्बन्ध

सृष्टि के आरम्भ से ही रहा है।

मानवीय चेतना प्रकृति के प्रति सदा से ही संवेदनशील रही है। प्रकृति का सौम्य एव भयानक दोनों ही रूप मानव-मन के अनुरूप प्रतिक्रिया करते हैं। प्रकृतिक शोभा को देखकर मनुष्य मन उल्लसित होता है। यह रूप प्रकृति का आलम्बन रूप होता है। वहीं उसे देखकर सुख या दुख का अनुभव करना उसका उद्दीपन रूप होता है। "मानव और प्रकृति के इस अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिंब है। अतः उस प्रतिबंध में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक है।"[1]

विद्यापति का प्रकृति चित्रण बहुत कुछ परम्परागत रूढ़ियों व नियमों पर आधारित है। उन्होंने प्रकृति का दो रूपों में वर्णन किया है— वर्ण्य विषय या आलम्बन रूप में और नायक नायिका के भावों को उनके संयोग- वियोग के अनुसार उद्दीपन रूप में। प्रथम प्रकार के प्रकृति वर्णन में ऋतुओं और प्राकृतिक शोभा का और उसके स्वतन्त्र सत्ता का चित्रण हुआ है। किंतु यहां प्रकृति का पूर्णरूपेण आलम्बन रूप में चित्रण नहीं हुआ है। सम्भवतः दरबारी वातावरण में रहने के कारण और अपनी नागर अभिजात्य प्रवृत्ति के कारण उन्होंने उस पर मानवीय भावों का आरोप किया है। कहीं राजा के रूप में तो कहीं तरुण रूप में और कहीं बालक रूप में। बसन्त ऋतु को कहीं राजा के रूप में तो यहां बसन्त राजा के समान वनस्थली में प्रवेश करता है तो प्रकृति के उपादान उसका स्वागत करने के लिए एकत्र कर दिए जाते हैं— नए पत्ते से सिंहासन बनाया जाता है, फूलों का छत्र बनता है, आम्र की मंजरियों से शिरोभूषण बनाया जाता है, पक्षी द्विजों की तरह आशीर्वाद- वचन उच्चरित करते हैं, लताएं पताका की तरह फहराती हैं, चांदनी या श्वेत पराग - कणों के चंदोवा तनता है :

नृप आसन नव पीढ़ल पात
कांचन कुसुम छत्र धरु मात।

मुख्यतः शृंगारी कवि होने के कारण विद्यापति ने नायिका की मनोदशा का चित्रण के लिए विविध ऋतुओं में प्रकृति का उद्दीपनकारी स्वरूप चित्रित किया है। विद्यापति के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप का वर्णन अधिक हुआ है।

उनकी पदावली में प्रकृति तीन रूपों में दिखाई पड़ती है—

नैसर्गिक रूप में
आलम्बन रूप में
उद्दीपन रूप में

हिंदी काव्य में प्रकृति का चित्रण विविध रूपों में हुआ है। इनमें आलम्बन, उद्दीपन, उपमान, पृष्ठभूमि, अलंकार, प्रतीक, उपदेश, बिम्ब, दूती, मानवीकरण, और मानव- भावनाओं का आरोप आदि सभी रूपों में हुआ है। संयोग शृंगार के अंतर्गत 'षडऋतु वर्णन' रूप में हुआ है तो दूसरी तरफ वियोग शृंगार में 'बारहमासा' के रूप में वर्णित हुआ है।

'मैथिली कोकिल' के नाम से जाने जानेवाले विद्यापति मध्यकालीन भारतीय साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनके काव्य में मानवीय संवेदनाओं और प्रकृति का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है। उनके काव्य में प्रकृति एक सजीव और गतिशील तत्व के रूप में प्रकट होती है, जो उनके काव्य की आत्मा को प्रकट करता है। विद्यापति ने अपने काव्य में प्रेम, भक्ति और प्रकृति को अभिन्न रूप में प्रस्तुत किया है विद्यापति के काव्य में प्रकृति नायिका की भावनाओं, ऋतु-सौंदर्य एवं प्रेम के विविध रूपों को चित्रित करने में सहायक बनती है। उनके काव्य में प्रकृति के विविध रूप प्रस्तुत हुए हैं—

प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं का सामंजस्य : विद्यापति के काव्य में प्रकृति और मानव मन के बीच गहरी समानता देखने को मिलती है। उन्होंने प्राकृतिक तत्वों को मानवीय भावनाओं का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में प्रेमी-प्रेमिका के मिलन में संयोग शृंगार और विरह के क्षणों में वियोग शृंगार को व्यक्त करने हेतु कोयल, बांसुरी, झरने, फूल और ऋतु जैसे तत्वों का मनोरम उपयोग किया गया है। उदाहरणार्थ - उनकी रचनाओं में बसंत ऋतु का उल्लास प्रेमी और प्रेमिका के मिलन के प्रतीक के रूप में इसप्रकार वर्णित हुआ है—

"सखि, देखह बसंत समुजि,
फूलल मधुर चंपा बकुल कंज।"

बसंत की सजीवता और प्रेम के सौंदर्य की अद्‌भुत अभिव्यक्ति हुआ है।

ऋतुओं का वर्णन : विद्यापति ने विभिन्न ऋतुओं का अत्यंत ही सजीव और मनोहारी वर्णन किया है। उनका प्रकृति चित्रण इतना वास्तविक और जीवंत है कि पाठक उसे अपनी आंखों के सामने दृश्यमान होते हुए अनुभव करता है।

1. बसंत ऋतु का वर्णन : बसंत ऋतु को विद्यापति ने प्रेम और उल्लास की ऋतु के रूप में प्रस्तुत किया है। इस ऋतु में प्रकृति में आये सुंदर परिवर्तन के अंतर्गत फूलों का खिलना, कोयल की कूक, और मलय पवन का चलना न केवल प्राकृतिक सौंदर्य को दर्शाया गया है, बल्कि प्रेमी-प्रेमिका के मिलन की संभावना भी जगती दिखाई पड़ती है। उदाहरणस्वरूप–

"कोइल कूजत मधुर स्वर,
मधुकर गुंजर मधुसे भरे।"

विद्यापति की पदावली में बसन्त ऋतु के प्रकृति के सुंदर चित्रण में नवीनता है–

सरस् बसन्त समय भल पावलि दछिन पवन बह धीरे।
सपनहु रूप वचन इक भाखीय मुखि ते दूरि करू चीरे।। [2]

एक अन्य गीत में विद्यापति 'चुमावन' नामक मिथिला की विशेष विधि का उपयोग करते हुए बसन्त का वर्णन करते हैं। यहाँ बसन्त को किसलयों का आसन दिया जाता है, मांगलिक कलश की स्थापना की जाती है, मकरन्द रूपी गंगाजल का प्रयोग होता है, अरुण अशोक का दीप जलाया जाता है, पूर्ण चन्द्र मांगलिक दधि का पात्र है, भ्रमरी निमंत्रण देती हुई घूमती है, किंशुक सिंदूर दान करता है और केतकी का पराग चारों ओर छा जाता है–

अभिनव पल्लव बईसक देल
धवल कमल फूल पुरइन भेल
करू मकरन्द, मंदाकिनी पान
अरुण असोक दीप दहु आन।

इन चित्रणों में मिथिला प्रदेश के लोकाचार की जानकारी मिलती है। ये वर्णन सांगरूपक अलंकार द्वारा प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को प्रस्तुत करते हैं। कवि ने बसन्त का चमत्कार पूर्ण ऐसा चित्रण किया है जो अपने आप में अनूठा है। "बसन्त वर्णन के अंतर्गत कवि ने ऋतुराज के जन्म से लेकर उसकी राज्य प्राप्ति का उल्लेख बड़ी सजीवता एवं कुशलता से किया है–

माघ मास सिरि पंचमी गंजाइली नवम मास पंचम हरुआई।
सुभ खन बेरा सुकुल पक्ष हे दिनकर उदित समाई।।" [3]

"विद्यापति ने बसन्त-वर्णन में निराली वर्णन चातुरी से काम लिया है। उन्होंने बसन्त का बालक के रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार प्रकृति में चेतनता का आरोप किया है। उसका मानवीकरण किया है। वसन्त का युवक होना, राजगद्दी पर बैठना आदि की कल्पना में कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। वसन्त नौ महीने पांच दिन गर्भ में रहा और माघ मास की शुक्ल पंचमी को उसका जन्म हुआ। इसलिए इस दिन 'वसन्तपंचमी' कहा जाता है। शुभ लक्षण युक्त बच्चे का जन्म हुआ–

"सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख है,
दिनकर उदित समाई है।
सोरह सम्पुन बतीस लखन सह
जनम लेल रितुराई है।।" [4]

वसन्त बड़ा होकर ऋतुराज बन जाता है। अब वह सजधज कर बाहर निकालता है–

बाल बसन्त तरुण हो धाओल
बढ़ए सकल संसारा।

दखिन पवन धन अंग उजारए
किसलय कुसुम परागे।
वसन्तराज का युद्ध अभियान का दृश्य अद्भुत है।
कुंद- बल्ली तरु छएल निसान।
पाटल तून अशोक दल बान।।
किंसुक लता लवंग एक संग।
हेरि सिसर पितु आगे दल भंग।।

वसन्तराज अपनी सेना का संगठन करता है और कुंद बल्ली को पताका बनाता है। पाटल पताका तरकश से सजता है तथा अशोक के पत्तों का बान बनाता है। पलाश के पत्तों से धनुष बनाता है और लवंग लता उस धनुष की प्रत्यंचा बनती है। विद्यापति की दृष्टि अत्यंत सरस् विषयों- वसन्त परिणय व प्रणय- केलि आदि पर जाती है। वसन्त के आगमन से वृंदावन नया रूप धारण कर लेता है तरुगण नवीन पत्तों से भर गए हैं। नए- नए पुष्प खिल उठे हैं और नूतन मलयानिल चलने लगा है। नव किशोर कृष्ण प्रेम से विभोर होकर यमुना के सुशोभित कुंजों में विहार करने लगते हैं। मधुपगण मदमस्त हो गए हैं। नवयुवती राधा का कृष्ण से मिलन होता है। वे नए आलिंगन पाश में आबद्ध होते हैं। कवि। कवि ने प्रकृति का अत्यंत मनोहर उद्दीपन रूप में वर्णन किया है। "वसन्त तो नारी के लिए उद्दीपन ही है। कवि कहते हैं—है युवतियों, लज्जा छोड़ खूब नाचो और गाओ। श्रेष्ठ व्यापारी वसन्त आया है। उससे अभी सभी अच्छी वस्तुएं मिल जाएंगी। हस्तिनी, चित्रिणी, पद्मिनी,गौरी, सांवरी, बूढ़ी, बाला सभी ने शृंगार किया है। रेशमी वस्त्र, आभूषण, चन्दन, अरगजा, कर्पूर आदि लगाई है। कुंकुम, केशर से अंगों में प्रलेप किया है।" [5]

वसन्त का रूप उन्मादक है। संयोग के क्षण में टेसू आनन्ददायक होता है तो विरह के समय उसके फूलों में अनुराग नहीं, आग उत्पन्न होती है।

2. वर्षा ऋतु का वर्णन : वर्षा ऋतु का चित्रण उनके काव्य में वर्षा ऋतु वर्णन का विरह और मिलन दोनों ही रूपों में चित्रित हुआ है। बरसात की बूंदें, काले बादल, एवं बिजली की चमक के माध्यम से उन्होंने मानवीय भावनाओं को व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ—

"जलद गगन में गर्जत भारी,
सजल सघन बरषा पुरवारी।"

यहां नायक-नायिका के विरह की पीड़ा और मानसून की मादकता एक साथ उभरती हैं।

विरहावस्था में प्रकृति विपरीत बन जाती है। उसका मनोरंजन व सुहावना रूप भी विरहिणी को सताने लगता है जो पूर्व में उसे प्रिय लगता था। नाद सौंदर्य इन चित्रों को अधिक आकर्षक बना देते हैं। बादलों का गर्जन, झंझा, बिजली की कड़क व कौंध, मत्त मयूरों का नृत्य जहां एक ओर विरहिणी की व्यथा को तीव्र करते हैं वहां पाठक के मन में वर्षा ऋतु की भयंकर रात के वातावरण की अनुभूति जगाकर उसके हृदय में भी अपेक्षित भावों का संचार करते हैं—

सखी है हर दुखक नहीं ओर
इ भर बादर माह भादर सुन मंदिर मोर।।
झाँपि घन गरजति सन्तत, भुवन भरी बरसतिया।
कन्त पाहन काम दारुन, सघन खर सर हंतीया। [6]

इसमें पावस ऋतु का सांगोपांग चित्रण हुआ है। यहां बादलों का घुमड़ना, घिरना, गरजना, घनघोर बरसना, बिजली कड़कना, दादुर बोलना तथा सघन अंधकार का छा जाना विरहिणी नायिका की अवस्था को और अधिक असहनीय बना देते हैं। नारी की व्यथा की इतनी तीव्र व्यंजना शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिलती है। ध्वन्यात्मक वस्तु- व्यापार इस दृश्य की प्रभावोत्पादकता और बढ़ा देती है। विद्यापति के काव्य में वर्षा ऋतु का अत्यंत मनोहारी चित्रण हुआ है। इस वर्णन में

इस ऋतु का इतना भयंकर बिम्बात्मक वर्णन हुआ है कि पाठक के सम्मुख अंधेरी रात में बादलों की गरज और बिजली की चमक का चित्र साकार हो उठता है–

आएल पावस निबिड़ अंधकार
सघन नीर बरसय जलधार
नदिया जोर चहु अथाह
भीम भुजंगम पथ चललाह।

यहां कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति प्रशंसनीय है।

3. शरद ऋतु का वर्णन : शरद ऋतु का वर्णन उनके काव्य में सौंदर्य और शांति का प्रतीक है। चांदनी रात, निर्मल जल, और कमल के फूलों का वर्णन उनके काव्य में इस ऋतु की सुंदरता को और बढ़ाते हुए प्रकट करते हैं–

"शरत चंदन जल धारा बह,
फूलल कंज कछार।"

4. ग्रीष्म ऋतु का वर्णन : ग्रीष्म ऋतु का चित्रण उनके काव्य में तपिश और विछोह के प्रतीक के रूप में होता है। इनमें झुलसती गमी और सूखे वातावरण के माध्यम से उन्होंने मानव जीवन की कठिनाइयों और नायिका की पीड़ा को उजागर करती है।

प्रकृति और प्रेम का चित्रण

विद्यापति के काव्य में प्रेम और प्रकृति का बड़ा गहरा नाता देखने को मिलता है। उन्होंने नायक-नायिका की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति के विभिन्न बिंबों का सहारा लिया है। उनका काव्य प्रेम के हर पहलू- मिलन, विरह, उल्लास, और वेदना को प्रकृति के विविध रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उदाहरणस्वरूप–

"चमकत बिजुरी बनवासा,
मन कर थिर न रह।"

यहां नायिका के मन की चंचलता एवं बादलों की गरज का सामंजस्य बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत हुआ है।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति का वह अनूठा स्वरूप चित्रित हुआ है जिसमें मानव मन के भावों के प्रतिकूल अवसर प्रकृति प्रदान करती है। प्रेमी के आग्रह पर प्रेमिका मिलन हेतु निकलने वाली है कि विपरीत मौसम के कारण नहीं निकल पाती है। यहां प्रेमातुर प्रेमिका के हृदय की साम्यता बताकर मानव मनोभाव के सौंदर्य को उकेरा गया है–

"गगन अब घन मह दारुन,सघन दामिनी झलकाई।
कुलिस पातन सबद झनझन, पवन खरत बलगई।।
सजनी, आजु दुरदिन भेल।
कंत हमर नितांत अगुसरी, संकेत कुंजहि जेल।।" [7]

भक्ति और प्रकृति रू विद्यापति के भक्ति सम्बन्धी काव्य में भी प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर उनके शिवभक्ति से जुड़े गीतों में प्रकृति का वर्णन भगवान शिव के सौंदर्य और महिमा का बखान करने के लिए किया गया है। उन्होंने हिमालय, गंगा और कैलाश पर्वत को शिव के स्वरूप से जोड़ते हुए भक्ति की गहराई को प्रकृति के विराट रूप के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप–

"गंगाजल की धारा, शुद्ध कांति उजियारा।
शिव के चरण बसे सारा।"

प्रकृति चित्रण में प्रतीकात्मकता : विद्यापति ने प्रकृति के प्रत्येक तत्व को मानवीय भावनाओं और अनुभवों का ही प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में कोयल प्रेम की प्रतीक है, तो बारिश की बूंदें विरह की पीड़ा को प्रकट

करती हैं। उन्होंने प्रकृति के माध्यम से पाठक के अन्तस् की भावनाओं को जगाने का प्रयास किया। जैसे–

"मधुकर कूजत कानन भीतर,
मन केउ कहि न सके।"

यहां मधुमक्खी का गुंजन प्रेम की मादकता और मन की स्थिति का प्रतीक है।

परम्परा के अनुसार विद्यापति ने बारहमासा पद्धति में भी प्रकृति का चित्रण किया गया है–

मोर पिया सखी गेल दूर देस
जीवन रये गेल साल सनेस
मास असाढ़ उनत नव मेघ।

उनका बारहमासा असाढ़ से आरम्भ होता है और उसका अंत ज्येष्ठ मास के साथ होता है–

बैसाखे तवे खर मरन समान
कामिनी कन्त हए पंचवान
न जुड़ि छाहरि न सरिस बारि
हम जे अभागिनी पापिनी नारि।

यहां भी हम देखते हैं कि प्रकृति पृष्ठभूमि में है, जबकि मुख्य वर्णन नायिका की विरह व्यथा प्रदर्शित करना ही है। सुख-दुख, संयोग और वियोग में प्रकृति का स्वरूप और उसका प्रभाव भिन्न भिन्न दिखाकर प्रकृति के विविध रूपों से ही परिचित कराया है। जो चांदनी रात संयोगवस्था से नायक नायिका को मायाजाल में बंधती है, वही विरहावस्था में उन्हें विरहाग्नि में जलाती है। फूलों की महक और भौंरो का गुंजन भी विरह और मिलन में अलग अलग प्रभाव डालते हैं। प्रथम स्थिति में वे हृदय को कामनायुक्त और कामोदीप्त करते हैं और दूसरी स्थिति में उसे रुलाते हैं और विरह व्यथा को तीव्र करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी परिस्थितियों के कारण विद्यापति प्रकृति का मुक्त चित्रण हम कर पाए हैं किंतु उनकी सूक्ष्म निरीक्षण- शक्ति और प्रकृति प्रेम असन्दिग्ध है।

निष्कर्ष : विद्यापति के काव्य में प्रकृति चित्रण उनकी काव्य प्रतिभा और गहन पर्यवेक्षण क्षमता का प्रमाण है। उनके काव्य में प्रकृति केवल भौतिक जगत का प्रतिनिधित्व नहीं करती, बल्कि मानवीय संवेदनाओं और अनुभवों का एक सजीव प्रतीक बनती है। विद्यापति ने प्रकृति को प्रेम और भक्ति का माध्यम बनाकर अपनी रचनाओं को अनोखा और कालजयी बनाया। उनका प्रकृति चित्रण भारतीय साहित्य में अद्वितीय है, जो आज भी पाठकों के हृदय को भाव-विभोर करता है। विद्यापति का प्रकृति चित्रण न केवल उनके काव्य की सौंदर्यता को बढ़ाता है, बल्कि इसे मानवीय संवेदनाओं और अनुभवों से जोड़ता है। उन्होंने प्रकृति को सजीव रूप में प्रस्तुत किया, जो उनके समय के समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब भी है। विद्यापति के काव्य में प्रकृति और मानव जीवन एक-दूसरे के पूरक के रूप में उभरते हैं, जो उनके साहित्य को कालजयी बनाता है।

सन्दर्भ

1. hi-everybodywiki.com, हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण
2. international journal of advance research and development, सिंह, डॉ कंचनलता, सितंबर 2018, पृ०- 99
3. www.duniyahindime.com, Sadaneera, Dr- Sanju, विद्यापति के काव्य की प्रमुख विशेषताएं, 7 अक्टूबर -2024
4. मिश्रा, डॉ राधाकांत, एम.ए पाठ्यक्रम (मुक्त), प्राचीन हिंदी काव्य, उत्कल विश्वविद्यालय, पृ० -09
5. प्राचीन हिंदी काव्य, एम.ए. (मुक्त, पाठ्यक्रम), उत्कल विश्वविद्यालय, पृ० -11
6. विद्यापति पदावली, पद संख्या-199, पृ०- 1367. विद्यापति पदावली, पद संख्या -112, पृ० - 9

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में परंपरा और आधुनिकता

जवाहर रंजन पंडा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक-753003, ओड़िशा
मो.9668711998
Jawaharranjanpanda@gmail.com

तेजेन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जो कहानीकार, कवि और लेखक के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर चुके हैं। चार दशकों से अधिक के साहित्यिक योगदान के साथ, उनकी रचनाएँ वैश्विक स्तर पर हिन्दी पाठकों को न केवल मनोरंजन प्रदान करती हैं, बल्कि ब्रिटेन और अन्य देशों में बसे भारतीय प्रवासियों के जीवन की सजीव झलकियाँ भी प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियाँ ब्रिटेन और भारतीय संस्कृति के मेलजोल को दर्शाते हुए प्रवासी जीवन के संघर्ष और आनंद को रोचक ढंग से चित्रित करती हैं।

तेजेन्द्र शर्मा वर्तमान में वेब पत्रिका 'पुरवाई' के संपादक हैं। उनके साप्ताहिक संपादकीय न केवल पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं, बल्कि उनकी गहरी वैश्विक दृष्टि और विचारशीलता के प्रमाण भी हैं। ये संपादकीय अब ऐसी सामग्री बन गए हैं, जिसकी प्रतीक्षा पाठक बेसब्री से करते हैं।

परंपरा और आधुनिकता मानव जीवन के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं, जो एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर जुड़े हुए हैं। परंपरा समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही रीति-रिवाज, संस्कार, आस्थाओं और आदर्शों का समूह है। यह हमारी संस्कृति की जड़ें होती है, जो समाज को स्थिरता और पहचान प्रदान करती हैं। परंपरा हमें हमारी जड़ों से जोड़े रखती है और समाज में नैतिकता, अनुशासन और सामूहिकता को बनाए रखने में सहायक होती है।

दूसरी ओर, आधुनिकता नए विचारों, तकनीकी प्रगति और परिवर्तनों को अपनाने की प्रवृत्ति है। यह प्रगति, विज्ञान और तार्किकता पर आधारित होती है। आधुनिकता व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और विकास को प्रोत्साहन देती है। इसके माध्यम से समाज में पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नई सोच और दृष्टिकोण का विकास होता है।

हालांकि, परंपरा और आधुनिकता के बीच कभी-कभी टकराव देखने को मिलता है। परंपरागत सोच को आधुनिक दृष्टिकोण के साथ सामंजस्य स्थापित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। परंपरा हमें अतीत से जोड़ती है, जबकि आधुनिकता हमें भविष्य की ओर ले जाती है। समाज के समुचित विकास के लिए इन दोनों के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

आज का समय इस बात की मांग करता है कि हम अपनी परंपराओं की सकारात्मकता को संजोए रखें और आधुनिकता के नवाचारों को अपनाकर सामाजिक प्रगति को गति दें। इस संतुलन के साथ ही एक समृद्ध और प्रगतिशील समाज का निर्माण संभव है।

परंपरा और आधुनिकता पर आधारित तेजेंद्र शर्मा जी के प्रसिद्ध तीन कहानियों पर हम यहां पर बात करेंगे तीन कहानी है– वन्स ए सोल्जर, कब्र का मुनाफा और शव यात्रा।

कहानी 'वन्स ए सोल्जर...' कैप्टन बिली मेहता, उनकी पत्नी प्रभजोत और उनके दोस्त दीपक की मृत्यु के बाद की घटनाओं को दर्शाती है। कैप्टन बिली, एक पूर्व भारतीय सेना पायलट, ने अपनी जिंदगी सेना में हेलिकॉप्टर उड़ाते और बाद में लंदन में डीएचएल एयरलाइन में पायलट के रूप में बिताई।

एक कार दुर्घटना में बिली और प्रभजोत की मृत्यु हो जाती है। दीपक, जो पहले ही मर चुका था, आत्मा के रूप में उनका स्वागत करता है। तीनों आत्माएं एम-1 मोटरवे पर भटक रही हैं, अपनी मृत्यु के अनुभव और जीवन की यादों को साझा करती हैं। "हेलिकॉप्टर और विमान उड़ाने के दौरान सिग्नल देना नहीं पड़ा और आज जब कार एक्सीडेण्ट हुआ तो सिग्नल देने का कोई प्रावधान ही नहीं था। बस सामने एक लॉरी पलटी और कैप्टन बिली मेहता की कार सीधी उस लॉरी के भीतर समाती चली गयी। मैं उस समय वहीं खड़ा था... मेरी मृत्यु भी कल वहीं और उसी जगह हुई थी... मोटर-वे एम-1 जंक्शन 153" कहानी उनके जीवन के बारे में गहराई से झांकती है कैसे बिली ने कारगिल युद्ध में वीरता दिखाई, उनका सिंगल माल्ट व्हिस्की के प्रति प्रेम, और उनकी पत्नी प्रभजोत का उनके प्रति अटूट समर्थन।

मृत्यु के बाद, ये आत्माएं अपनी पार्थिव देहों को देखती हैं, पुलिस की कार्रवाई और उनके परिवार के प्रति चिंता व्यक्त करती हैं। "ष्कैप्टन साब हालांकि मैं तो आपकी तरह हुस्न-परस्त नहीं हूं। मगर कल मैं भी ठीक आप ही की तरह सोच रहा था। और हां पहले तो मुझे यह घबराहट हुई कि मेरा शरीर तो यहां पड़ा है एम-1 पर, भला मेरे बेटे को ख़बर कौन देगा?... फिर एकदम याद आया कि मैंने तो अपना फ़्यूनरल पहले से बुक कर रखा है।

उसके सर्टिफ़िकेट की एक कॉपी ग्लव-बॉक्स में भी रख ली थी। जब पुलिस वाला कार की तलाशी ले रहा था, तो उसको अचानक वो सर्टिफिकेट दिखाई दे गया। उन्होंने सीधे फ़्यूनरल एजेंन्ट को फ़ोन किया। उसे और कहीं फ़ोन करने की जरूरत ही नहीं पड़ी।... मेरे बेटे को भी उन्होंने ही फ़ोन किया होगा।... राजीव ने आपको फ़ोन करके बताया नहीं क्या?ष वे समझने की कोशिश करते हैं कि मृत्यु के बाद क्या होगा, भारत लौटने और अपनी अधूरी इच्छाओं को पूरा करने की बात करते हैं। कहानी उनके जीवन, मृत्यु, और आत्मा के सफर के बीच एक संवेदनशील झलक प्रस्तुत करती है। जो मृत्यु के बाद आत्मा के रूप में भारत की यात्रा पर निकलते हैं। वे दिल्ली कैंट के कैरिअप्पा विहार, गोपीनाथ बाजार, और सदर के पुराने स्थानों को देखते हैं, जहाँ से उनकी यादें जुड़ी हैं।

कैप्टन मेहता को फौजी जीवन की पुरानी यादें भावुक कर देती हैं। उनकी पत्नी प्रभजोत अपने पुराने घर और बच्चों की यादों में खो जाती हैं। इसके बाद, वे अम्बाला एयरबेस पहुंचते हैं, जहां वे राफाल विमानों की ऐतिहासिक लैंडिंग देखते हैं। कैप्टन मेहता गर्व महसूस करते हैं, जबकि दीपक और प्रभजोत उनके साथ खड़े होकर उनकी खुशी साझा करते हैं। फिर वे श्रीनगर और कारगिल की यात्रा करते हैं, जहां कैप्टन मेहता अपने सैन्य जीवन की कठिन परिस्थितियों को याद करते हैं। वे कारगिल युद्ध के संघर्षों और फौजियों की देशभक्ति का वर्णन करते हैं। इस दौरान, प्रभजोत और दीपक भी फौजी जीवन की गहराई और देशप्रेम को समझने लगते हैं।

कहानी 'वन्स ए सोल्जर, ऑल्वेज़ ए सोल्जर' के संदेश के साथ समाप्त होती है "सच तो ये है कि हमारा शरीर मर सकता है मगर हमारे भीतर का फ़ौजी कभी नहीं, मरता। याद रखना... वन्स ए सोल्जर, ऑल्वेज़ ए सोल्जर!'' जो यह दिखाता है कि फौजी का जज्बा मरने के बाद भी जीवित रहता है। यह आत्माओं की यात्रा एक श्रद्धांजलि है उन सैनिकों को जो देश के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देते हैं।

'कब्र का मुनाफा' - यह कहानी इंग्लैंड में रहने वाले दो पाकिस्तानी परिवार की कहानी है। कहानी के प्रमुख पात्र खलील और नजम हैं। जो यूरोप की कंपनियों में काम करते हैं। दोनों बहुत अच्छे दोस्त हैं। खलील की बीवी नादिरा है और नजम की आबिदा। खलील और नजम अपनी बीवियों के लिए कब्र बुक कर रखी हैं। नादिरा और आबिदा दोनों उनकी इन हरकतों से परेशान हैं। लेकिन आबिदा को इस खबर से इतना फर्क नहीं पड़ता जबकि नादिरा कब्रों की एडवांस बुकिंग की बात से परेशान हो जाती है और कब्रें कैंसिल करती है। बाद में पता चलता है कि कब्रों की कीमत सात सौ पाउंड से बढ़कर ग्यारह सौ पाउंड हो गई है। यानी उन्हें चार सौ पाउंड की मुनाफा होता है। एक तरह से उन्हें नया धंधा मिल जाता है।

'शवयात्रा' कहानी की शुरुआत इस प्रकार होती है– "उसे फेसबुक की लत थी...यह कहना शायद पूरा सच नहीं होगा उसके लिए तो फेसबुक एक नशा था। ...पोस्ट, लाइक्स, कमेंट्स, उसके लिये किसी ऑक्सीजन से कम नहीं थे।" यह एक ऐसी कहानी है जिसमें नरेन मुख्य पात्र है। वह मरने से पहले ही जानना चाहता है कि उसकी मृत्यु के बाद सोशल मीडिया में लोगों की क्या प्रतिक्रिया होगी। उसके दोस्त, रिश्तेदार, लेखक, बिरादरी और दुश्मनों की क्या प्रतिक्रिया होगी और वह उसके बारे में क्या क्या कहेंगे। वह अपनी आंखों से देखना चाहता है। वह कहता है अगर वह सचमुच मर गया तो कुछ खुद देख नहीं पायेगा महसूस कर नहीं पाएगा। उसके मरने के बाद लोग उसके विषय में क्या कहते हैं, क्या सोचते हैं, यह जानना उसके लिए जीने से अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। नरेन पिछले वर्ष अस्पताल गया था जहाँ एक छोटी सी सर्जरी के लिए एडमिट हुआ था उसके कुछ फोटो उसके पास थे उन फोटो को सोशल मीडिया में पोस्ट करते हुए वह कहता है– उससे पैंक्रियाज कैंसर हुआ है और उसे लगता है उसका अंतिम समय आ पहुंचा है। वह कहता है यदि जाने-अनजाने में उसने किसी का दिल दुखाया है तो उन सब से माफी मांगता है और फिर कहता है– जब तक वह अपनी सेहत की जानकारी अपडेट कर पाएगा करेगा। अगर वह कोमा में चला गया तो उसके पुत्र और उसके दोस्त जिन्हें उसने अपने अकाउंट का पासवर्ड दे दिया है उसकी हालत की जानकारी देंगे। बहुत सारे लाइक और कमेण्ट आते हैं। कुछ लोग उसके जल्दी ठीक हो जाने की दुआ भी देते हैं। एक व्हाट्सएप ग्रूप भी बना दिया जाता है। नरेन मल्होत्रा सेहत अपडेट इसमें उसके स्वास्थ्य की सभी जानकारी अपडेट भी की जाती है। नरेन अपनी मृत्यु की पोस्ट अपने दोस्त राज के नाम से करता है– "दोस्त आपको एक दुरूखद समाचार देने जा रहा हूं। मेरा प्यारा दोस्त कैंसर जैसी भयानक बीमारी से जूझता हुआ कल रात नींद में ही चल बसा। सर्जरी से पहले उसने मुझसे कहा था–प्यारे दुनिया में अकेले ही आया था... अकेला ही जा रहा हूं.. अकेले ही चले जाना है। हस्पताल में उसका अंतिम चित्र इस पोस्ट के साथ लगा रहा हूं।" इस पोस्ट से इतने लाइक कमेण्ट आते हैं कि नरेन सह नहीं पाता। "आखरी शब्द राज के कानों में गूंज रहे थे–राज मुझे बचा लो राज...नरेन मरना नहीं चाहता था... मगर कंप्यूटर स्क्रीन पर लगातार लाइक्स और कमेण्ट्स की टिंग टिंग जारी थी।"

इस कहानी के माध्यम से लेखक यह कहना चाहते हैं कि सोशल मीडिया में झूठ और सच का लोग विचार नहीं करते सच और झूठ के बारे में निर्णय लेने की उनकी क्षमता मर सी जाती है जिसके दुष्परिणाम से मानव समाज ग्रसित हो चुका है। आगे चलकर इसका परिणाम और भयंकर हो सकता है।

तीनों कहानियां परंपरा और आधुनिकता को उजागर करती हैं। 'वन्स ए सोल्जर...' में परंपरा देशभक्ति और सैन्य गौरव में दिखती है, जबकि आधुनिकता हेलिकॉप्टर उड़ाने, राफाल विमानों की लैंडिंग और मृत्यु के बाद आत्माओं के संवाद में झलकती है। 'कब्र का मुनाफा' परंपरागत मृत्यु संस्कार और कब्र बुकिंग की धार्मिक धारणा को दर्शाती है, लेकिन इसे व्यापारिक अवसर में बदल देना आधुनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण को रेखांकित करता है। 'शवयात्रा' में परंपरा मृत्यु को एक संवेदनशील और व्यक्तिगत अनुभव मानती है, जबकि आधुनिकता इसे सोशल मीडिया पर लाइक्स और कमेंट्स के माध्यम से मान्यता पाने का साधन बना देती है। ये कहानियां समाज में परंपराओं के बदलते स्वरूप और आधुनिकता के प्रभाव को गहराई से उजागर करती हैं।

सन्दर्भ

1. शर्मा तेजेन्द्र, संदिग्ध, पृष्ठ-29
2. शर्मा तेजेन्द्र, संदिग्ध, पृष्ठ-31
3. शर्मा तेजेन्द्र, संदिग्ध, पृष्ठ-41
4. शर्मा तेजेन्द्र- मृत्यु के इन्द्रधनुष, शवयात्रा, पृष्ठ- 180
5. शर्मा तेजेन्द्र- मृत्यु के इन्द्रधनुष, शवयात्रा, पृष्ठ- 192

6. शर्मा तेजेन्द्र - मृत्यु के इन्द्रधनुष, शवयात्रा, पृष्ठ- 194

सहायक सूची

1. शर्मा तेजेन्द्र, संदिग्ध, शिवना प्रकाशन, (म.प्र), 2023, ISBN- 978-81-19018-90-1
2. शर्मा तेजेन्द्र, कब्र का मुनाफ़ा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, ISBN- 978-81-7138-204-0
3. शर्मा तेजेन्द्र, मृत्यु के इन्द्रधनुष, इंडिया नेटबुक्स, दिल्ली, 2019, ISBN- 978-81-9431-24-3-7

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित 'सिंहलद्वीप की राजकुमारी' लघुकथा संग्रह में सामाजिक सरोकार

डॉ. सुनीता देवी
सहायक प्रोफेसर हिंदी
राजकीय महाविद्यालय नलवा, हिसार
email : devadrsunata@gmail.com
Mob. no 9813090945

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए वह अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरता है संघर्षो का यह आरोह-अवरोह न केवल हमारे मानस पटल पर अपनी छाप छोड़ता है अपितु हमारे सामाजिक-जीवन को भी प्रभावित करता है और हमारे व्यक्तिव का निर्माण करता है। यही बात डा. नरेश सिहाग जी के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। डा. नरेश सिहाग एक प्रसिद्ध वकील और समाजसेवी रहे हैं लेकिन कालान्तर में कुछ ऐसा हुआ कि शिक्षा और साहित्य के प्रति उनका रुझान बढ़ता चला गया और आज वह एक प्रतिष्ठित साहित्यकार के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए हैं अभी हाल ही में उनका लघुकथा संग्रह सिंहलद्वीप की राजकुमारी पढने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसे पढकर बुद्धि की हलचल न उसमें उभरे सामाजिक सरोकारों पर लिखने को विवश कर दिया।

बीज शब्द : निवेश, सोम्यता, सहयोग चतुराई सरोकार, नैतिकता, संतोष आदि। डा.नरेश ने ग्रामीण जीवन से जुड़े विभिन्न संदर्भो, सामाजिक वातावरण व व्यवहारिक परिवेश को अपनी कहानियों, कविताओं व निबंधों के माध्मय से बखूबी उकेरा है। उनके द्वारा रचित 'सिंघलद्वीप की राजकुमारी' लघुकथा संग्रह में सामाजिक सरोकार के छींटे स्थान-स्थान पर परिलक्षित होते हैं। मानवीय करुणा, उपकार, संतोष, भाईचारे की भावना आदि उनके सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते है।

अक्सर नेता बनने की चाह में नेता तो हर कोई बन जाता है लेकिन सबमें नेतृत्व के गुण नही होते वास्तविक नेता वही है जो अपनी ताकत और बल से लोगों पर नियन्त्रण न करके उन्हें अपने पराक्रम,सहज स्वभाव, प्रेम व स्नेह के वशीभूत करके खुद से जोड़े रखता है। सिंहलद्वीप की राजकुमारी कहानी में भी अर्जुन ने एक श्रेष्ठ नेता का परिचय दिया है "अर्जुन ने पहले खजाने को बहुत समझदारी से खोजा, फिर जादुई वन में अपने साहस और बुद्धिमानी से राक्षस को हराया और सबसे महत्वपूर्ण बात उसने प्रजा के साथ मिलकर उनके मन में विश्वास और प्रेम पैदा किया। अर्जुन ने जो किया वह किसी भी प्रतियोगी से कहीं अधिक मूल्यवान था"[1] इस प्रकार अर्जुन का प्रजा से व्यवहार सामाजिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है।

'सहयोग की भावना' कहानी में मोहन, रामू और राजू नामक तीन मित्र गावों को बाढ़ से बचाने की योजना बनाते हैं और गांवों के लोगों को समझाकर सहयोग करने के लिए तैयार कर लेते हैं, "सबने मिलकर अपने-अपने काम में हाथ बंटाया। कुछ लोग लकड़ी और बर्तन लाने में मदद कर रहे थे तो कुछ लोग मिटटी लाकर बांध बना रहे थे और कुछ लोग दिवार को

मजबूत करने में लगे थे। काफी मेहनत के बाद, गांव के पास एक मजबूत दिवार बन गई, जो बाढ़ के पानी को रोकने में सफल रही।"[2]

डॉ. नरेश सिहाग जी द्वारा लिखित 'उपकार का ऋण' कहानी समाज में भलाई की भावना को विकसित करती है। इस कहानी में मोहन ने उपकार का असली अर्थ समझा और बड़े ही अच्छे ढंग से रामलाल के उपकार का ऋण चुका दिया। उसे यह शिक्षा भी रामलाल से ही मिली थी। जब मोहन ने रामलाल का धन्यवाद किया तो रामलाल ने उससे कहा था कि "मुझे कुछ नहीं चाहिए। अगर कभी तुमसे किसी को मदद की जरूरत पड़े, तो तुम जाकर मदद करना यही मेरे लिए सबसे बड़ा उपहार होगा"।[3]

'लालच का अंत' कहानी में रामू एक साधारण किसान था और हरिराम एक व्यापारी। हरिराम अतिरिक्त लाभ कमाने के लिए रामू को उसके सारे मीठे फल खरीदने का प्रलोभन देता है लेकिन ईमानदार रामू उसकी बातों के जाल में नहीं फंसता। इससे हरिराम को एहसास होता है कि मनुष्य को लालच के वशीभूत होकर गलत तरीक़ों को नहीं अपनाना चाहिए "लालच कभी भी किसी को संतुष्टि नही दे सकता। ईमानदारी और संतोष से ही सच्ची खुशी मिलती है"[4]

इसी प्रकार 'गड़ा हुआ धन' नामक कहानी भी डा.नरेश सिहाग के विचारों की सरलता, सहजता और सामाजिक सरोकारों की पुष्टि करती है। इस कहानी में हरी के पास जो जमीन थी वह बंजर थी इसलिए वह बड़ी मुश्किल से परिवार का पालन-पोषण कर रहा था। एक दिन अपने खेत को उपजाऊ बनाने के लिए वह खेत में हल चला रहा था। लेखक लिखते है कि "अचानक उसकी हल किसी कठोर चीज से टकराई। उसने पास जाकर देखा और पाया कि वह पुरानी संदुकनुमा चीज जमीन में गढ़ी हुई थी। उसे यह देखकर हैरानी हुई। उसने उसे बाहर निकला और देखा कि वह एक पुरानी ताम्र पात्र थी जो किसी खजाने से भरी हुई थी उसमें सोने के सिक्के, बहुमूल्य रत्न और गहनों का ढेर था"।[5] उस खजाने को पाकर उसके मन में घमंड और पाप पैदा नहीं हुआ अपितु उसने अपने धन का सही सदुपयोग किया और जरूरतमन्दो और गरीबों की मदद की।नरेश जी ने इस कहानी के द्वारा समाज को यह संदेश देना चाहा है कि अगर हम अपनी सम्पति का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए और समझदारी से खर्च करें तो हम स्वयं को और दूसरों को भी खुशहाल बना सकते है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि 'सिंहलद्विप की राजकुमारी' लघु कथा संग्रह में संकलित कहानियां सिंहलद्वीप की राजकुमारी, सहयोग की भावना, उपकार का ऋण, लालच का अंत, गड़ा हुआ धन आदि में सच्चाई, ईमानदारी, भाईचारे की भावना, संतोष आदि सामाजिक सरोकारों से ओत-प्रोत हैं। इनमें इंसानियत, वेदना-सम्वेदना, सुख-दुःख का चित्रण समाज में एक चेतना जागृत करता है।

निसंदेह डॉ. नरेश सिहाग का यह लघु कथा संग्रह समाज के विकास व आने वाले शोधार्थियो के लिए एक आदर्श व मिल का पत्थर साबित होगा।

संदर्भ

1. सिंहलद्वीप की राजकुमारी, डॉ. नरेश सिहाग, पृष्ठ- 10
2. वही, पृष्ठ - 11
3. वही, पृष्ठ 19
4. वही, पृष्ठ 26
5. वही, पृष्ठ - 39

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

न्यायिक सक्रियता : भारतीय लोकतंत्र में भूमिका, विकास, प्रभाव और सीमाएँ

हरकेश मीणा
सह आचार्य
राजनीति विज्ञान
श्रीमती नर्बदा देवी बिहानी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नोहर
जिला - हनुमानगढ़, राजस्थान।

शोध सारांश- भारत एक संवैधानिक लोकतंत्र है, जहाँ शासन व्यवस्था तीन प्रमुख स्तम्भों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका पर आधारित है। संविधान निर्माताओं ने शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत अपनाते हुए इन तीनों अंगों को स्वतंत्र लेकिन परस्पर संतुलित रखा। न्यायपालिका को संविधान का संरक्षक तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक माना गया है। कालान्तर में कार्यपालिका की निष्क्रयता के कारण न्यायापालिका को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिला। जिसने लोकतन्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाई व लोगो के अधिकारों को सरक्षित किया लेकिन न्यायिक सक्रियता में शक्ति पृथक्करण के सिंद्वान्त को प्रभावित किया है।

प्रस्तावना- समय के साथ यह अनुभव किया गया कि केवल कानूनों की शाब्दिक व्याख्या करना सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए पर्याप्त नहीं है। जब विधायिका कानून बनाने में असफल होती है या कार्यपालिका अपने दायित्वों का सही ढंग से निर्वहन नहीं करती, तब न्यायपालिका सक्रिय होकर जनहित में हस्तक्षेप करती है। इसी प्रवृत्ति को न्यायिक सक्रियता कहा जाता है। भारतीय लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता ने सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावशाली माध्यम बनकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ एवं परिभाषा

न्यायिक सक्रियता वह स्थिति है जिसमें न्यायालय संविधान और कानूनों की व्यापक, उदार और उद्देश्यपरक व्याख्या करते हुए सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु सक्रिय भूमिका निभाता है। इसमें न्यायपालिका केवल विवादों का निपटारा करने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज की समस्याओं पर भी ध्यान देती है। न्यायिक सक्रियता में न्यायालय अधिकारों की रक्षा और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए विधायिका एवं कार्यपालिका की सीमाओं के आगे बढकर निर्णय लेती है। न्यायालय न्यायिक सक्रियता के माध्यम से सरकारी अगों को इनके सवैधानिक दायित्व पूर्ण करने के लिए बाध्य करता है। इसके माध्यम से संविधान की व्याख्या करके व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षित करने में न्यायपालिका महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेषकर संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करके स्वास्थ्य पर्यावरण और शिक्षा जैसे अधिकारों को सरक्षित करते है। भारत में 1990 के दशक में पर्यावरण व भ्रष्टाचार से सम्बधित मामलो में इसका भरपूर प्रयोग किया गया है।

सरल शब्दों में, जब न्यायालय कानून की कठोर सीमाओं से बाहर निकलकर मानव गरिमा, समानता और न्याय को प्राथमिकता देता है, तो वही न्यायिक सक्रियता है। जनहित याचिका, स्वतः संज्ञान, दिशा-निर्देश जारी करना और प्रशासनिक कार्यों की निगरानी न्यायिक सक्रियता के प्रमुख उपकरण हैं।

न्यायिक सक्रियता की आवश्यकताः- न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता कई कारणों से उत्पन्न हुई—

1. सामाजिक और आर्थिक असमानता
2. कमजोर और वंचित वर्गों की न्याय तक सीमित पहुँच
3. कार्यपालिका की निश्क्रियता
4. विधायिका द्वारा समय पर कानून न बनाना
5. मानवाधिकारों का उल्लंघन

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक भेदभाव विद्यमान हैं, वहाँ न्यायिक सक्रियता ने न्याय को आम जनता के निकट पहुँचाया है।

भारत में न्यायिक सक्रियता का ऐतिहासिक विकास

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा की उत्पति मूलरूप से अमेरिका में मारबरी बनाम मेडिसन मामले में न्यायाधीश जन मार्शल द्वारा किये गये फैसले से मानी जाती है। भारत में 1975-77 के बीच जनता के अधिकारों को पूनः स्थापित करने के प्रयास में न्यायिक सक्रियता ने जोर पकड़ा। 1970-80 के दशक में न्यायमूर्ति वी.आर.कृष्ण अयर और पी एन भगवती न्यायिक सक्रियता को स्थापित करनें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। न्यायपालिका की न्यायिक सक्रियता में संसद बनाम सर्वोच्च न्यायालय के बीच उच्चता के सम्बन्ध में विवाद का जन्म दिया तथा इसके कारण शक्ति पृथक्करण का सन्तुलन बिगड़ने का खतरा पैदा हो गया।

प्रारंभिक काल (1950-1970)

स्वतंत्रता के बाद प्रारंभिक वर्षों में न्यायपालिका अपेक्षा.त संयमित रही। इस काल में न्यायालय ने संसद की सर्वोच्चता को अधिक महत्व दिया। ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (1950) में अनुच्छेद 21 की संकीर्ण व्याख्या की गई, जिससे न्यायिक सक्रियता सीमित रही।

परिवर्तन का काल (1970-1980)

1970 के दशक में न्यायपालिका की भूमिका में परिवर्तन आया। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) में 'संविधान की मूल संरचना सिद्धांत' प्रतिपादित किया गया।

आपातकाल (1975-77) के अनुभवों के बाद न्यायपालिका अधिक सजग और सक्रिय हुई।

सक्रियता का स्वर्ण युग (1980 के बाद)

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के निर्णय ने अनुच्छेद 21 को व्यापक अर्थ दिया। इसके बाद जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायिक सक्रियता का व्यापक विस्तार हुआ।

जनहित याचिका : न्यायिक सक्रियता का आधार

जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रभावी माध्यम है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति या संस्था समाज के कमजोर वर्गों के अधिकारों के लिए न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। पत्र, पोस्टकार्ड या समाचार पत्र की रिपोर्ट

के आधार पर भी न्यायालय संज्ञान ले सकता है। इससे न्याय तक पहुँच सरल और सुलभ हुई।

न्यायिक सक्रियता के प्रमुख निर्णय

मौलिक अधिकार

हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य - त्वरित न्याय को मौलिक अधिकार माना गया।

ओल्गा टेलिस बनाम बाम्बे नगर निगम आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार से जोड़ा गया।

महिला अधिकार

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) - कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने हेतु दिशा-निर्देश।

शायरा बानो मामला - तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित किया गया।

पर्यावरण संरक्षण

एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ प्रदूषण नियंत्रण और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े कई निर्णय।

सामाजिक न्याय

बंदी प्रत्यक्षीकरण, जेल सुधार, बाल श्रम उन्मूलन और शिक्षा के अधिकार से जुड़े निर्णय।

न्यायिक सक्रियता के क्षेत्र

1. मौलिक अधिकारों की रक्षा
2. मानवाधिकार संरक्षण
3. पर्यावरण और सतत विकास
4. प्रशासनिक जवाबदेही
5. भ्रष्टाचार नियंत्रण
6. शिक्षा और स्वास्थ्य अधिकार

न्यायिक सक्रियता के लाभ

1 लोकतंत्र की मजबूती- न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र में संतुलन बनाए रखती है।

2 कमजोर वर्गों को संरक्षण-गरीब, अशिक्षित और वंचित वर्गों को न्याय मिलता है।

3 संवैधानिक मूल्यों की रक्षा-न्याय, स्वतंत्रता और समानता के आदर्श साकार होते हैं।

4 प्रशासनिक सुधार-कार्यपालिका की मनमानी पर अंकुश लगता है।

न्यायिक सक्रियता की आलोचना

1 शक्तियों के पृथक्करण का उल्लंघन- आलोचकों का मानना है कि न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है।

2 न्यायिक अतिक्रमण- नीति निर्माण से जुड़े मामलों में हस्तक्षेप को न्यायिक अतिक्रमण कहा जाता है।

3 कार्यान्वयन की समस्या-न्यायालय के आदेशों का प्रभावी क्रियान्वयन हमेशा संभव नहीं होता।

न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण में अंतर

न्यायिक सक्रियता	न्यायिक अतिक्रमण
जनहित केंद्रित	शक्ति अतिक्रमण
संवैधानिक मूल्यों की रक्षा	नीति निर्माण में हस्तक्षेप
आवश्यक और संतुलित	अत्यधिक और विवादास्पद

न्यायिक सक्रियता वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान समय में न्यायपालिका तकनीक, पर्यावरण, मानवाधिकार और सुशासन के क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही है। डिजिटल अधिकार, निजता का अधिकार और स्वच्छ पर्यावरण जैसे विशयों पर न्यायिक सक्रियता देखी जा सकती है।

भविष्य की दिशा

भविष्य में न्यायिक सक्रियता को संतुलन, संयम और संवैधानिक मर्यादाओं के साथ आगे बढ़ाना आवश्यक है। विधायिका और कार्यपालिका को भी अपनी जिम्मेदारियाँ निभानी होंगी, ताकि न्यायपालिका पर अनावश्यक बोझ न पड़े।

निष्कर्ष

न्यायिक सक्रियता भारतीय लोकतंत्र का एक सशक्त स्तंभ है। इसने संविधान को एक जीवंत दस्तावेज बनाया है और सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप दिया है। यद्यपि इसकी सीमाएँ और आलोचनाएँ हैं, फिर भी संतुलित न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र, मानवाधिकार और संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए अनिवार्य है। अतः कहा जा सकता है कि न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र की आत्मा की रक्षा करने वाला प्रहरी है, बशर्ते इसका प्रयोग विवेक, संयम और संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर किया जाए।

सन्दर्भ

1. शर्मा, जय प्रकाश, "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था" राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2000
2. जैन, डॉ. पुखराज, फड़िया, डॉ. बाबुलाल 'भारतीय शासन एवं राजनीति', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2016
3. एम, लक्ष्मीकान्त, भारतीय राज व्यवस्था
4. प्रो.सेवा सिंह बाजवा, भारत में न्यायिक सक्रियता, वैभव पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
5. इण्डिया टूडे
6. दैनिक समाचार पत्र।